वे दोनों और वह

वे दोनों और वह

विमल मित्र

पर मैं किसकी कहानी कहने बैठा हूं ?

मदन दा की ? इन्दुलेखा की ? या फिर कुन्तीदेवी की ? गलती सभी से होती है, पर अपनी गलती की इतनी बड़ी कीमत मदन दा की तरह क्या सभी चुका सकते हैं ? मदन दा के पास क्या-कुछ नहीं था ? विद्या थी, स्वास्थ्य था । आम आदमियों के पास जो चीजें नहीं होतीं—वे सभी थी । फिर भी किस भूल की वजह से उनमें ये सारे गुण रहते हुए भी उनके जीवन की इतनी करुण परिणति हुई ? और इन्दुलेखा देवी ?

पत्नी बहुतों की रहती है, बहुतों की नहीं । पर मदन दा की पत्नी जैसी कितनों को मिलती है ? कोई पत्नी पति की प्रतिभा का सम्मान करती है और कोई पति की सुखी गृहस्थी में आग का कारण बन जाती है । कोई तो पति के दोष और उसकी त्रुटियों को क्षमा की आड़ में छुपा लेती है और कोई अवहेलना से पति को प्रताड़ित करती रहती है । संसार में पति-पत्नी के रिश्ते को लेकर ढेर सारे जटिल उपन्यास लिखे गए हैं, लेकिन ऐसी कहानी कितने उपन्यासों में मिलेगी ? और फिर इन्दुलेखा देवी की तरह की पत्नी कितने पतियों को प्राप्त हो है और ऐसी पत्नी की इतनी अवहेलना कितने पति कर ही सकते हैं ?

इसीलिए तो कह रहा था कि मैं ये आखिर किसकी कहानी बताना चाहता हूं—मदन दा की, इन्दुलेखा की या फिर कुन्तीदेवी की ?

याद आता है—घटना शादी के दिन ही घटी थी। मैंने जिन दिनों डायरी लिखना शुरू किया था, मेरी उम्र ढल चुकी थी। लेकिन उसके पहले ? उसके पहले के जीवन के बारे में सोचता हूं तो कई बार एक अजीब-सी थकान महसूस होती है। और अब तो अचानक किसीसे भेंट होने पर मुश्किल में पड़ जाता हूं। क्या नाम है ? क्या परिचय है ? कहां पहले देखा था, बड़ा परिचित-सा चेहरा है—बस और कुछ याद नहीं आता। पर इतना ज़रूर याद है कि वह घटना शादी की रात ही घटी थी। मैंने पूछा था—आप कभी बदामतल्ले मोहल्ले में थीं क्या ? प्रश्न सुनकर महिला थोड़ी संकुचित हो उठी थी।

एक के बाद दूसरी आ रही थीं और उनमें से कई मेरे प्रश्नों का उत्तर अच्छी तरह देकर चली भी जा रही थीं। बालिका-विद्यालय में शिक्षिका की नियुक्ति के लिए इण्टरव्यू चल रहा था। सभी बी० ए० पास थीं। बहुत-सारी दरख्वास्तें थीं। दूसरे स्कूलों में पढ़ाने का अनुभव भी उन्हें था। इण्टरव्यू लेकर निर्वाचन का भार मुझी पर था। स्थायी सेक्रेटरी भुवन बाबू छुट्टी पर गए हुए थे। जाते समय मुझे कह गए थे—विवाहित महिला को प्रेफरेंस दीजिएगा, क्योंकि अविवाहित लड़कियां काम-धाम सीखकर अन्त में शादी कर नौकरी छोड़ देती हैं। इसलिए—

स्कूल-कमेटी की भी यही राय थी। भुवन बाबू के साथ मेरी दोस्ती बड़ी पुरानी थी। इस मोहल्ले में नया मकान बनने के बाद मैं यहीं चला आया था। कमेटी के सदस्य मुझे दरख्वास्त वगैरह पकड़ाकर बोले थे—पन्द्रह उम्मीदवार हैं। उनमें से आप किसी एक को चुन लीजिएगा। स्कूल भुवन बाबू का ही था। इस स्कूल के पीछे उन्होंने काफी पैसा खर्च किया था। खैर! निर्दिष्ट तारीख को मैं इण्टरव्यू ले रहा था। भुवन बाबू की स्वर्गीया पत्नी उर्मिला देवी के नाम पर स्कूल का नाम रखा गया था। माहवार पचहत्तर रुपया बेसिक और तीन रुपया सालाना इन्क्रिमेंट। दस साल में बढ़कर तनख्वाह एक सौ पांच रुपये हो जाएगी।

पर क्वार्टर नहीं था, आठ बजे ऑर्डिनरी ट्रिप के लिए निकल जाते थे, दशहरे के समय प्रवास करके पूजा-स्पेशल के तौर पर निकल जाते थे। वनिता बालिका-विद्यालय में इसी तरह की कई सुविधाएँ थीं। यह भूपन बाबू की ही कृपा थी। सरकार ने ग्रान्ट दिये या नहीं, इसकी उन्होंने कभी परवाह नहीं की। स्कूल के खर्च के लिए पैसे कम पड़ने पर वह अपनी जेब से भर देते। भूपन बाबू ने मुझसे कहा था—यह एक अजीब मुहल्ला है, साहब! कोई किसीका पता देख ही नहीं सकता। आप यहां के लिए नये हैं न, धीरे-धीरे सब समझ जाइएगा।

कुमारी सुनंदा हाजरा, कुमारी सुषमा सेन, कुमारी सर्वाणी सेन गुप्ता···

—आपका नाम ?

—श्रीमती इन्दुलेखा देवी।

एकमात्र विवाहिता वही थीं। थोड़ा भारी गम्भीर चेहरा। देखने पर लगता अच्छी, डर भी लगता। वनिता बालिका-विद्यालय की बालिकाएं इस चेहरे को आदर देंगी, और फिर भूपन बाबू ने भी मुझसे खास विवाहिता महिला का ही निर्वाचन करने के लिए कहा था।

मैंने पूछा—आपके बच्चे ?

इन्दुलेखा देवी बोलीं—मेरी कोई सन्तान नहीं।

—पति क्या करते हैं ?

—पति नहीं हैं।

मैंने चौंककर महिला की तरफ फिर गौर से देखा। क्या मैंने भूल की थी ? पर मांग में सिन्दूर था। माथे के बीचोंबीच लाल स्पष्ट थी। सिर पर थोड़ा आंचल भी था। विवाहित जीवन के सारे लक्षण थे। मैं बेवकूफ की तरह लगकर अपलक उन महिला को देखता रहा, पर तुरन्त ही अपने को संभाल लिया। मेरे ऊपर सिर्फ वनिता बालिका-विद्यालय के लिए शिक्षिका के चुनाव का ही भार था। किसीको शादी के लिए लड़की देखने के लिए तो मैं वहां आया नहीं था। अधिक उत्सुकता जाहिर करना अनुचित था, और कुछ पूछूं, यह भी शायद मेरे लिए ठीक नहीं।

स्कूल से सम्बन्धित कुछ और बातें मुझे पूछनी थीं, पर सब गड़बड़ा गया। कुछ देर तक मैं अजीब पशोपेश में पड़ा रहा। ऐसी छोटी-सी बात भी इतनी बड़ी समस्या बन सकती थी, यह किसे मालूम था! उपन्यास-कहानियां लिखकर कई कठिन समस्याओं का समाधान मैंने किया है। कल्पना में जटिल जीवन की कई ऐंठनों को खोला है, पर ऐसा कुछ होगा, यह मैं नहीं जानता था। किवाड़ बन्द करके कमरे में टेबल-कुर्सी पर बैठकर, कलम चलाकर ख्याति भी मुझे कुछ कम नहीं मिली है। सभीको मालूम है, लोकचरित्र मैं खूब समझता हूं। विशेषकर नारी-चरित्र। तो फिर मांग में सिन्दूर रहने पर भी पति न होने का भेद आखिर क्या था? क्या पति ने अपनी पत्नी को त्याग दिया था?

मैंने आंखें नीचे करके कहा—आप बैठिए।

कहानी लिखने की कुछ सुविधाएं हैं। लिखते-लिखते कलम रोककर सोचा जा सकता है, गलत शब्दों को काट-पीटकर ठीक भी किया जा सकता है, बेठीक बातों को फिर से नये ढंग से लिखा जा सकता है, वक्त की कमी भी नहीं सताती। वह महिला अपने-आप ही बोलीं—मैंने अपने पति को छोड़ दिया है।

पति को छोड़ दिया है! कैसी अजीब बात है! पत्नी भी कभी पति का त्याग कर सकती है क्या? मैं तो समझता था कि पति ही पत्नी को छोड़ देता है; पर इन्दुलेखा देवी को देखकर मुझे लगा—मैंने इन्हें कहीं देखा जरूर है। क्या तो नाम था? परिचय?—कहां देखा था? बड़ा परिचित-सा चेहरा—आगे और याद नहीं आया। बहुत पहले का देखा हुआ कोई चेहरा—उन दिनों मुझे डायरी लिखने की आदत नहीं थी। मैंने पूछा—आप कभी बदामतल्ले में रहती थीं? मेरी तरफ एक नज़र डालकर इन्दुलेखा देवी ने कुछ कहना चाहा, पर संकोचवश बोल नहीं सकीं।

मैंने कहा—बचपन में मैं भी बदामतल्ले में ही रहता था। वह मेरा जन्मस्थान है।

इन्दुलेखा देवी बोलीं—तब तो आप उन लोगों को ज़रूर जानते होंगे? मेरे पति का नाम...

उन्हें आगे और कुछ कहने की जरूरत नहीं पड़ी। पल भर में मैं स्वर्ग और मर्त्य लोक का परिभ्रमण कर आया। मटरू दा, उनके पिताजी, उनकी मां इन लोगों को तो मैं अभी भी नहीं भूला हूं। मटरू दा की मा उस दिन कितनी रोई थीं। मोहल्ले के सभी लोग उस दिन विवाह-मण्डप में उपस्थित थे। बाजा बज रहा था। नौबत बज रही थी। बरातियों की बांहों में बेलमोतिया की फूलमालाएं लिपटी हुई थीं। लोग-बाग शरबत पी रहे थे सिगरेट पी रहे थे। पर एकाएक सारा जमघट ठण्डा पड़ गया था।

२

भुवन बाबू छुट्टी से लौट आए।

बोले—क्यों साहब, निर्वाचन का क्या हुआ ?

मैंने कहा—अभी तक तो कोई निर्णय नहीं ले पाया हूं।

भुवन बाबू बोले—इसमें इतना सोचने-विचारने का है ही क्या ? जिसे भी हो, नियुक्ति-पत्र पकड़ा दीजिए। चेहरा देखकर ही चरित्र का भी अनुमान लगा बैठेंगे, इसीलिए तो मैंने यह काम आपको सौंपा था।

मैंने कहा—माफ कीजिएगा, भुवन बाबू। मैं हार गया हूं, मेरा अहंकार टूट चुका है।

—क्यों ? भुवन बाबू अवाक होकर मेरी ओर घूरते रहे। बोले—क्यों यह हारने की बात कहां से उठ गई ? अहंकार टूटने का क्या कारण हो सकता है, मैं समझा नहीं ?

मैंने कहा—है, भुवन बाबू ! कारण है। आप लोग समझते है, साहित्यिक होने से ही आदमी को पहचानना आसान हो जाता है, पर यह बात बिलकुल गलत है। हम लोग सिर्फ बना-बनाकर कहानियां लिख सकते हैं। कोशिश करने पर आप भी लिख सकते हैं। मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा है। एक थी। बी० ए० पास, बच्चा वगैरह भी नहीं है—पर पति को छोड़ आई है—ऐसी टीचर आप रखेंगे ? कहिए !

स्कूल से सम्बन्धित कुछ और बातें मुझे पूछनी थीं, पर सब गड़बड़ा गया। कुछ देर तक मैं अजीब पशोपेश में पड़ा रहा। ऐसी छोटी-सी बात भी इतनी बड़ी समस्या बन सकती थी, यह किसे मालूम था! उपन्यास-कहानियां लिखकर कई कठिन समस्याओं का समाधान मैंने किया है। कल्पना में जटिल जीवन की कई ऐंठनों को खोला है, पर ऐसा कुछ होगा, यह मैं नहीं जानता था। किवाड़ बन्द करके कमरे में टेबल-कुर्सी पर बैठकर, कलम चलाकर ख्याति भी मुझे कुछ कम नहीं मिली है। सभीको मालूम है, लोकचरित्र मैं खूब समझता हूं। विशेषकर नारी-चरित्र। तो फिर मांग में सिन्दूर रहने पर भी पति न होने का भेद आखिर क्या था? क्या पति ने अपनी पत्नी को त्याग दिया था?

मैंने आंखें नीचे करके कहा—आप बैठिए।

कहानी लिखने की कुछ सुविधाएं हैं। लिखते-लिखते कलम रोककर सोचा जा सकता है, गलत शब्दों को काट-पीटकर ठीक भी किया जा सकता है, बेठीक बातों को फिर से नये ढंग से लिखा जा सकता है, वक्त की कमी भी नहीं सताती। वह महिला अपने-आप ही बोलीं—मैंने अपने पति को छोड़ दिया है।

पति को छोड़ दिया है! कैसी अजीब बात है! पत्नी भी कभी पति का त्याग कर सकती है क्या? मैं तो समझता था कि पति ही पत्नी को छोड़ देता है; पर इन्दुलेखा देवी को देखकर मुझे लगा—मैंने इन्हें कहीं देखा ज़रूर है। क्या तो नाम था? परिचय?—कहां देखा था? बड़ा परिचित-सा चेहरा—आगे और याद नहीं आया। बहुत पहले का देखा हुआ कोई चेहरा—उन दिनों मुझे डायरी लिखने की आदत नहीं थी। मैंने पूछा—आप कभी बदामतल्ले में रहती थीं? मेरी तरफ एक नज़र डालकर इन्दुलेखा देवी ने कुछ कहना चाहा, पर संकोचवश बोल नहीं सकीं।

मैंने कहा—बचपन में मैं भी बदामतल्ले में ही रहता था। वह मेरा जन्मस्थान है।

इन्दुलेखा देवी बोलीं—तब तो आप उन लोगों को ज़रूर जानते होंगे? मेरे पति का नाम...

उन्हें आगे और कुछ कहने की जरूरत नहीं पड़ी। पल भर में मैं स्वर्ग और मर्त्य लोक का परिभ्रमण कर आया। अटल दा, उनके पिताजी, उनकी मां इन लोगों को तो मैं अभी भी नहीं भूला हूं। अटल दा की मा उस दिन कितनी रोई थीं। मोहल्ले के सभी लोग उस दिन विवाह-मण्डप में उपस्थित थे। बांस बज रहा था। नौबत बज रही थी। बरातियों की बांहों में बेलमोतिया की फूलमालाएं लिपटी हुई थीं। लोग-बाग शरबत पी रहे थे सिगरेट पी रहे थे। पर एकाएक सारा जमघट ठण्डा पड़ गया था।

२

भुवन बाबू छुट्टी से लौट आए।

बोले—क्यों साहब, निर्वाचन का क्या हुआ ?

मैंने कहा—अभी तक तो कोई निर्णय नहीं ले पाया हूं।

भुवन बाबू बोले—इसमें इतना सोचने-विचारने का है ही क्या ? जिसे भी हो, नियुक्ति-पत्र पकड़ा दीजिए। चेहरा देखकर ही चरित्र का भी अनुमान लगा बैठेंगे, इसीलिए तो मैंने यह काम आपको सौंपा था।

मैंने कहा—माफ कीजिएगा, भुवन बाबू। मैं हार गया हूं, मेरा अहंकार टूट चुका है।

—क्यों ? भुवन बाबू अवाक होकर मेरी ओर घूरते रहे। बोले—क्यों यह हारने की बात कहां से उठ गई ? अहंकार टूटने का क्या कारण हो सकता है, मैं समझा नहीं ?

मैंने कहा—है, भुवन बाबू ! कारण है। आप लोग समझते है, साहित्यिक होने से ही आदमी को पहचानना आसान हो जाता है, पर यह बात बिल्कुल गलत है। हम लोग सिर्फ बना-बनाकर कहानियां लिख सकते हैं। कोशिश करने पर आप भी लिख सकते हैं। मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा है। एक थी। बी० ए० पास, बच्चा वगैरह भी नहीं है—पर पति को छोड़ आई है—ऐसी टीचर आप रखेंगे ? कहिए !

—पति को छोड़ दिया है ? भुवन वावू के मन में भी दुविधा हुई। इतने वर्षों से वह स्कूल चला रहे थे। बुजुर्ग आदमी थे। जीवन को उन्होंने देखा-पहचाना था। अनेक जगह घूम आए थे। लोगों से ठगे भी गए थे। लेकिन आदमी अनुभवी थे। पर उन्हें भी संकोच में पड़ा देखकर मैंने कहा—आप स्वयं भी सोचिए और अपनी कमेटी के मेम्बरों से भी सलाह-मशविरा कर लीजिए।

मुझे मालूम है कि कमेटी-वमेटी कुछ नहीं। भुवन वावू ही सर्व-सर्वा हैं। फिर भी औपचारिकता के लिए मैंने कमेटी का नाम लिया था।

भुवन वावू बोले—जो कुछ करना है, मैं ही करूंगा। आप सभीको जानते भी तो नहीं।

—लेकिन वाद में हमें दोष मत दीजिएगा। मैंने कहा।

भुवन वावू बोले—नहीं, दोष आपके सिर नहीं मढ़ूंगा। पर उसने अपने पति को क्यों छोड़ दिया ?

मैंने कहा—अवश्य ही पति में कोई दोष रहा होगा।

—आपने पूछा था ?

—यह भी कोई पूछने की वात है !

पर भुवन वावू को यह मालूम नहीं था कि मुझे कुछ पूछने की जरूरत नहीं थी। मैं सब कुछ जानता था। डायरी नहीं लिखता था। इसलिए ठीक-ठीक समय या तारीख नहीं वता पाऊंगा—पर वाकी वातें तो मुझे याद ही थीं।

३

याद आता है, जाड़े की रात थी। सम्भवतः माघ का महीना था। अटल दा की शादी हो रही थी। अटलविहारी वासु। हममें से कौन उन्हें नहीं जानता था ! वदामतल्ले के लोग उनकी ओर अंगुली दिखा-कर कहते— देखो, देखो लड़का नहीं, हीरा है हीरा। उसी अटल दा की शादी की रात वह घटना घटी।

अटल दा हमारे बचपन के सरपंच थे। और बचपन ही क्यों, वह पूरे मुहल्ले के ही आदर्श थे। हर वक्त हाथ में मोटी-मोटी अंग्रेजी किताबें थामे चलते। बचपन में उन किताबों का नाम पढ़कर मेरी तो समझ में कुछ भी नहीं आता था। हम लोगों के खेल के मैदान में एक बार आकर सबसे मिलकर फिर वहां से चले जाते। बदामतल्ला उस समय इतना एडवांस नहीं था। कभी कोई अटल दा से पूछता—आज खेलोगे नहीं अटल दा? तो अटल दा कहते—नहीं रे। आज मुझे भवानीपुर जाना है।

हेडमास्टर सुरेश बाबू बड़े कड़े मिजाज के आदमी थे। खद्दर पहनते थे, खद्दर भी खद्दर की ही ओढ़ते थे। उन्हें देखकर ही हम लोगों को डर लगता था। पर अटल दा हेडमास्टर साहब के कमरे में बिल्कुल निडर होकर घुस जाते। हम लोगों को बाहर से अटल दा की आवाज सुनाई पड़ती। बड़ी गम्भीर और मीठी आवाज थी अटल दा की। अटल दा किस काम से हेडमास्टर साहब के कमरे में जाते, यह हम लोगों को मालूम नहीं था।

अटल दा ने मोहल्ले में एक दरिद्र-भण्डार भी खोला था। उनके कहने पर हम लोग घर-घर जाकर चावल-आटा वगैरह मांगकर लाते और दरिद्र-भण्डार के दफ्तर में जमा करते। अटल दा कभी थकते भी नहीं थे। हम लोगों के साथ कड़ी धूप में, बरसात में चावल ढोकर लाते। चावल, कपड़ा, पैसा सब इकट्ठा करते, फिर ये चीजें बदामतल्ले के गरीबों में बांटी जाती। कभी-कभी वह किसी-किसी के घर भी चुपचाप जरूरत की चीजें पहुंचा आते, ताकि दूसरों के सामने उन्हें छोटा न बनना पड़े।

उस बार आई० ए० की परीक्षा का रिजल्ट निकला। बदामतल्ले के लोगों ने सुना, अटल दा को स्कालरशिप मिली है।

हम सभी अटल दा के घर पहुंचे। अटल दा को स्कालरशिप मिलना एक तरह से हम लोगों की ही उपलब्धि थी। अटल दा मोहल्ले के गौरव थे। बदामतल्ला स्कूल के किसी लड़के को पहली बार स्कालर-

शिप मिली थी, पर घर जाकर हम लोगों ने सुना, अटल दा घर पर नहीं हैं।

अटल दा के पिताजी आशु बाबू बोले—वह तो कल रात से ही घर नहीं लौटा है।

अटल दा घर नहीं लौटे हैं, यह सुनकर हम लोगों को बहुत ताज्जुब हुआ था। अटल दा फिर सारी रात कहां रहे ? क्या वह इसी तरह सारी-सारी रात घर से बाहर ही बिताते थे ?

दूसरे दिन अटल दा क्लब में आए। चेहरा सूखा और उदास, बाल बिखरे हुए। पर खेलने के लिए तैयार होने लगे। हम लोगों ने उन्हें घेर लिया। अटल दा को स्कालरशिप मिली थी, यह कोई मामूली बात नहीं थी। बदामतल्ले के इतिहास में ऐसी घटना पहले कभी नहीं घटी थी। उसी अटल दा को हम लोग अपनी आंखों के सामने देख रहे थे, यह क्या हमारा कम सौभाग्य था !

अटल दा ने पूछा—क्यों रे, इस तरह क्या देख रहा है ?

अब तक मैं संकोच में पड़ा था, पर अब और अपने को नहीं संभाल सका। पूछा—अटल दा, कल तुम घर पर नहीं थे ?

अटल दा बोले—हां, रात काफी हो गई थी, इसलिए घर नहीं लौट सका।

—रात को हम लोग तुम्हारे घर गए थे। कहां थे तुम ?

अटल दा बोले—भवानीपुर।

इस संक्षिप्त उत्तर से मेरा कुतूहल मिटा नहीं। पर यह पूछने की हिम्मत भी नहीं हुई कि भवानीपुर में अटल दा कहां जाते थे। भवानीपुर कलकत्ता में किस तरफ था, वहां अटल दा को इतना क्या काम रहता था कि इतनी रात हो जाती थी ? कि अटल दा घर भी नहीं लौट सकते थे—ये सारे प्रश्न मेरे दिमाग मे गूंज रहे थे, पर अटल दा इतने ऊंचे आदर्श के व्यक्ति थे कि उनपर मन में किसी प्रकार का सन्देह लाना ही दुष्कर-सा लगता था। अटल दा हमारे क्लब के सेक्रेटरी और मोहल्ले के गौरव थे। हम लोगों को विश्वास था, अटल दा कभी कोई गलत काम कर ही नहीं सकते।

उम्र में अटल दा मुझसे बहुत बड़े नहीं थे। बस, केवल एक-दो साल; पर उनका व्यक्तित्व गगनचुम्बी था। उम्र न भी हो, अपने व्यक्तित्व से वह सबको पछाड़ देते थे। कुछ दिनों बाद पता चला कि भवानीपुर में अटल दा को क्या काम रहता था। भवानीपुर में भी अटल दा का एक क्लब था। वहां वह गरीबों के बच्चों को पढ़ाते थे। वहां उन्होंने एक सान्ध्यकालीन स्कूल की स्थापना की थी। वहीं किसी को हैजा हो जाने की वजह से, दो दिन तक अटल दा उसकी सेवा करते रहे, पर फिर भी उस लड़के को नहीं बचा पाए थे।

उस दिन मैं मुग्ध नयनों से अटल दा को देखता रहा था। कितने विचित्र थे वह—चारों तरफ उनकी सजग दृष्टि रहती, मौन सेवा में लगे रहते। प्रशंसा के भूखे नहीं, प्रचार का लालच नहीं। मेरी तरह और लोग भी अटल दा को मुग्ध नयनों से देखते रह जाते। अटल दा देखकर, चकित होकर पूछते—इस तरह क्या देखता है रे?

अटल दा के पिताजी आशु बाबू बहुत सम्पन्न व्यक्ति नहीं थे। संकरी-सी गली में एक पुराना-सा मकान था। बाहर ईंट की दीवार थी। उसपर से बालू झरता रहता; पर वह जीर्ण मकान हम लोगों के लिए किसी तीर्थ-स्थान से कम नहीं था। उसी मकान के एक कमरे में एक तख्तपोश पर चटाई बिछी रहती। सेल्फ पर ढेर सारी किताबें सजी रहतीं। बाद में जिन बड़े लेखकों की किताबें मैंने पढ़ी थीं, उन सबका नाम पहले-पहल मैंने अटल दा से ही सुना था। मुझे लगता- हमारे बड़ामतल्ले के हेड-मास्टर सुरेश बाबू भी जो बात नहीं समझ सकते, वह अटल दा समझ जाते हैं। दीवाल पर तरह-तरह के चार्ट टंगे हुए थे। छत की कड़ी में एक रिंग लटकता था। इस रिंग के सहारे अटल दा रोज कसरत करते। सुबह-सुबह उठकर मुंह-हाथ धोकर अटल दा व्यायाम में जुट जाते, फिर थोड़ी देर तक ध्यान लगाए बैठे रहते। हम लोगों से भी वह अक्सर ध्यान लगाने के लिए कहा करते।

हम लोग कहते—ध्यान कैसे लगाऊं? मन्त्र-तन्त्र तो हमें कुछ मालूम ही नहीं। अटल दा यह सुनकर हंस पड़ते। बोलते—ध्यान लगाने के लिए मन्त्र की जरूरत पड़ती है, यह तुमसे किसने कहा? मैं

पूछता—तो फिर ध्यान लगाकर क्या सोचूंगा ? अटल दा कहते—दीवार पर पेंसिल से एक गोल निशान बनाओ, फिर उस तरफ एकटक देखते रहो। पलकें भी मत झपकाओ। यह देखो—ठीक इस तरह। कहकर वह तख्तपोश पर बिछी चटाई पर पद्मासन लगाकर बैठ जाते और दीवार पर टंगे पिनबोर्ड पर लाल निशान की तरफ स्थिर दृष्टि से देखने लगते। थोड़ी देर के बाद बोलते—पहले पांच-दस सेकण्ड तक ताकना, फिर एक-दो मिनट करके समय बढ़ाते जाना। देखना, अभ्यास हो जाने पर बड़ा आसान लगने लगेगा।

मैं पूछता—तुम कितनी देर तक बिना पलक झपकाए ताक सकते हो, अटल दा ?

अटल दा बोलते—बहुत अच्छी तरह तो मैं अब भी नहीं कर सकता हूं। कठिन काम है, अभी भी अभ्यास की जरूरत है।

मैं पूछता—यह सब करने से क्या होता है ?

अटल दा बोलते—मन की शक्ति बढ़ती है, विल-पावर बढ़ता है। चार-पांच दिनों तक बिना खाए-पिए भी रहा जा सकता है—तबीयत पर कोई असर नहीं होगा। चाहने पर कोई घण्टों समुद्र में भी डूबा रह सकता है।

—तुम घण्टों पानी में डूबे रह सकते हो अटल दा ?

अटल दा हंस देते। बोलते—धत्, इतना आसान है क्या ? यह एक दिन का काम थोड़े ही है। वर्षों साधना करने पर सिद्धि प्राप्त होती है। सिद्धि मिल जाने पर देखना, मोटी से मोटी किताब भी एक बार पढ़ने से कण्ठस्थ हो जाएगी। तेरी आंखों से एक ज्योति निकलेगी। तेरी इच्छा के विरुद्ध कोई कुछ नहीं कर सकेगा। जिससे चाहे अपना काम करवा ले। इसीके बल पर तो मैं इम्तहान में फर्स्ट आता हूं। मैं तो ज़्यादा पढ़ता नहीं, पर दूसरे लड़के पचास बार पढ़कर जितना याद करते हैं, मैं एक ही बार पढ़कर याद कर लेता हूं।

मैं कहता—मैं भी तुम्हारी तरह करूंगा, अटल दा।

अटल दा बोलते—कर तो सकता है, पर इसके लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना होगा। ब्रह्मचर्य-पालन किए बिना कुछ नहीं हासिल हो

सकता। उससे आघात आ सकती है।

यह सुनकर मैं तो हैरान रह गया। पूछा—उससे क्या आघात आ सकती है?

—ब्रह्मचर्य-पालन किए बिना अगर कोई ध्यान लगाने की कोशिश करता है, तो हार्टफेल हो जाने की सम्भावना रहती है।

अटल दा की बात सुनकर मैं बहुत डर गया था।

अटल दा बोलने गए—एकदम बेमौत मारा जाएगा। कितने लोग इस तरह से मर गए हैं—कितनों को लकवा मार जाता है। फिर सारी जिन्दगी अपंग होकर गुजारनी पड़ती है।

मैंने पूछा—ब्रह्मचर्य का किस तरह से पालन करना पड़ेगा।

अटल दा बोले—किसी औरत की तरफ बिल्कुल आँखें नहीं उठाना। नारी-जाति को मां समझना। तुम्हें स्वामी विवेकानन्द की लिखी एक किताब पढ़ने के लिए दूंगा। उन्हींकी किताब पढ़कर तो मैं इतना कुछ सीख सका हूं। बड़े अजीब आदमी थे यह विवेकानन्द। एक बार किसी किताब पर आँखें दौड़ा लेते, बस पूरी किताब ही कण्ठस्थ हो जाती। पर वह कभी स्टार-थियेटर वाली सड़क से गुजरे भी नहीं।

मैंने पूछा—क्यों?

—मुझे मालूम नहीं, थियेटर का मतलब ही है, औरतों का अड्डा।

अटल दा के कमरे में बैठकर मुझे बहुत बार अपने पर ही खेद होता। लगता, पढ़ने में, लिखने में, स्वभाव-चरित्र में मैं कैसे अटल दा की तरह बनूं। वह भी एक समय था जब क्लब के सारे लड़के अटल दा बनने के स्वप्न देखा करते थे। उन दिनों हम लोग अटल दा की ही तरह बाल छंटवाते। उन्हींकी तरह धोती-कुर्ता पहनते। मैंने तो अपना पढ़ने का कमरा भी अटल दा की ही तरह जंचा कर रखा था। उन्हींकी देखा-देखी स्यूट हैमसन की किताब, हक्सले की किताब, इब्सन, बर्नार्ड शा आदि की किताबें खरीद ली थीं। स्वामी विवेकानन्द का शिकागो-लेक्चर तथा ब्रह्मचर्य पर लिखी उनकी किताब पढ़कर समझ गया था कि ब्रह्मचर्य कितनी कठोर चीज है।

अटल दा कहते—मन में बुरी भावना आने पर मां को याद करना,

ओर देख, शरीर हमेशा तन्दुरुस्त रखना। शरीर यदि ठीक रहेगा तो मन कभी भी नहीं भागेगा।

कभी किसी दिन सुबह जल्दी नींद खुल जाने पर मैं अटल दा को बुलाने के लिए चल देता। सोचता—हो सकता है अटल दा अभी तक सोए पड़े हों। जाड़े का मौसम—नाक-मुंह कम्बल से ढककर घर से निकलता; पर अटल दा के घर पहुंचकर खिड़की से झांकता तो ताज्जुब में पड़ जाता। अटल दा उस समय भी बिलकुल तैयार दिखते। उस भयंकर सर्दी के मौसम में भी दाढ़ी बनाना, स्नान, पूजा-पाठ आदि समाप्त हो चुका होता। लालटेन जलाकर कोई किताब पढ़ते होते। आज याद कर सकता हूं कि सुबह उठने के मामले में हम लोग कभी भी अटल दा को नहीं हरा पाए थे।

धीरे-धीरे अटल दा की और भी तरक्की हुई। कालेज की परीक्षा में वह प्रथम आए। पहले की तरह अब उनसे भेंट भी नहीं होती थी।

अटल दा का कार्यक्षेत्र बदामतल्ले से बाहर दूर-दूर तक विस्तृत हो गया था। कब वह कालेज जाते, कब लौटकर आते, हमें मालूम ही नहीं चलता। कालेज की छुट्टी के बाद घर लौटकर रोज़ हमारे क्लब में उनका आना अब सम्भव नहीं था। अपने घर पर भी वह समय पर नहीं लौट पाते।

कभी-कभी मैं पूछ लेता—कल कहां थे अटल दा?

—एक मीटिंग में फंस गया था। अटल दा जवाब देते। रोज़ ही अटल दा किसी न किसी मीटिंग में फंस जाते। बीसियों काम रहते उन्हें। वास्तव में अटल दा एक कर्मरत पुरुष थे। अटल दा जैसे आदमी सिर्फ हमारे क्लब को लेकर माथा-पच्ची करें, यह कैसे हो सकता था!

पर अटल दा यह ज़रूर कहते—मैं क्लब में नहीं आ सकता, पर तुम लोग अपना काम करते रहना, अवहेलना नहीं करना।

हम लोग पूरे मन से क्लब की तरक्की तथा अपनी तरक्की पर ध्यान देते, क्योंकि मन में ऐसी धारणा बैठ गई थी कि अपने काम का मतलब

अटल दा का ही नाम करता था।

किसी-किसी दिन अचानक ही अटल दा कस्बे में आ जाते, फिर कई-कई दिनों तक बिलकुल गायब रहते। कई दिन तक मैं सुबह उनके घर नहीं जा सका था। अटल दा बोल गए थे कि उनके पास बिलकुल समय नहीं है। असल में अटल दा बदमाशतत्वों को मारकर दूर के आदमी बन चुके थे। कालेज के दोस्तों के साथ मिलकर नये-नये कामों में उलझे रहते। उस साल हम लोगों की भी हाई स्कूल की परीक्षा थी। मैं भी मन लगाकर पढ़ने में जुट गया। कभी-कभार अचानक भेंट हो जाने पर अटल दा आकर पूछते— क्यों, कैसी पढ़ाई चल रही है?

मैं कहता—बहुत डर लगता है, अटल दा।

—डर? अरे, डर किस बात का?

मैं कहता—तुम्हारी तरह का ब्रेन मेरा थोड़े ही है।

अटल दा बोलते—ब्रेन क्या भगवान कभी किसीको देता है! ब्रेन तो स्वयं बनाना पड़ता है। तभी तो कोई कुछ हासिल कर सकता है। कठोर ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। फिर कोई भी बाधा राह नहीं रोक सकती। एक बार जो चीज पढ़ोगे, मन पर उतर आएगी। उस नियम का पालन करता है न?

—कौन-सा नियम?

—ध्यान लगाने के लिए कहा था न!

मैंने कहा—कोशिश तो करता हूं, पर रोज नियम से बैठ नहीं पाता। सुबह आंख ही नहीं खुलती।

अटल दा ने पूछा—रोज कितने घण्टे सोता है?

मैं सुनकर भी अनसुनी कर गया। बाद में अटल दा के सामने जाने में भी शर्म और संकोच से गड़ जाता। अपनी शक्ति और सामर्थ्य की सीमा पर ग्लानि होती। अटल दा एक जीनियस थे। उनके आगे हम लोगों की क्या गिनती? दस-दस बार एक ही पेज को कण्ठस्थ करने पर भी याद नहीं होता। गणित का हल निकालने में सिर का पसीना जमीन को गीला कर देता। हम लोगों की क्या तमन्ना? सड़क चलते कोई सुन्दर मुखड़ा दीखा और मन मुग्ध उठता। हम लोगों पर मदन और

ब्रह्मचर्य की शिक्षा व्यर्थ हो जाती। अक्सर अपने को धिक्कारता कि अटल दा की तरह किसी सुन्दरी को देखने पर उसे मां के रूप में क्यों नहीं सोच सकता ? जानता हूं कि हम लोग कमज़ोर हैं, हमारा मन भी उतना ही कमज़ोर है। एक दिन रात को मोटी किताबें हाथ में लिए अटल दा को तेज कदमों से घर लौटते देखा। मुझे देखकर वह चौंककर रुक गए। बोले—इतनी रात को कहां गया था रे ? मैंने कहा—दवा लाने डाक्टर के यहां गया था, पिताजी की तबीयत ठीक नहीं—पर, इतनी रात गए तुम कहां से लौट रहे हो, अटल दा ?

अटल दा बोले—घर लौटने में तो मुझे रोज ही इतनी देर हो जाती है।

—पर, इतनी रात अटल दा ? रात के नौ बज चुके हैं।

अटल दा बोले—किसी-किसी दिन तो इससे भी देर से लौटता हूं।

—लेकिन क्यों ? इतनी देर तक रात को कहां क्या काम करते हो, अटल दा ?

अटल दा अत्यंत सहज भाव से बोले—इधर मुझे भवानीपुर से एलगिन रोड भी जाना पड़ता है। लड़के छोड़ते ही नहीं, उसके बाद लाइब्रेरी जाता हूं। एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी में काफी समय लग जाता है। फिर थोड़ा रुककर बोले—देख न, ये तीन किताबें ले जा रहा हूं। आज रात को खत्म करके कल सुबह लौटाने का वादा भी कर चुका हूं।

सुनकर मैं हैरान रह गया। इतनी मोटी-मोटी तीन किताबें एक रात में ही अटल दा कैसे पढ़ पाएंगे ! कब तो पढ़ेंगे और कब सोएंगे ? यद्यपि यह मैं जानता था कि अटल दा की स्मरणशक्ति और पढ़ने की क्षमता असाधारण है, तथापि बदामतल्ले के लोगों की धारणा थी कि आशु बाबू का लड़का अटल बदामतल्ले का गौरव बढ़ाएगा। मैट्रिक में स्कालरशिप मिली है, इण्टरमीडिएट में भी मिली है। जब तक कालेज में पढ़ेगा, शायद मिलती ही रहेगी। यह लड़का कभी बदामतल्ले को बदनाम नहीं कर सकता ; और सच में बी०ए० में अच्छा रिज़ल्ट करके अटल दा ने साबित कर दिया कि वाकई वह बदामतल्ले के होनहार लड़के हैं।

४

आज इतने दिनों के बाद उन दिनों की बात सोचकर मुझे हंसी आती है। बचपन के उन दिनों में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से लेकर महामनीषियों ने जो कुछ कहा था, उसे पढ़कर उसे वेद-वाक्य मानता था। उस समय नहीं जानता था कि पढ़ने-लिखने में फर्स्ट आना और तबला बजाने में फर्स्ट आना एक ही चीज है। उस समय तो बस, यही जानता था कि जीवन में अगर उन्नति करना है, प्रतिष्ठित होना है, तो पढ़ाई में फर्स्ट आना ही है। विद्यार्थी जीवन में कभी मुझे स्कालरशिप नहीं मिली। साधारण तौर से परीक्षा पास करने में ही जान निकल जाती थी। इसलिए यह भी जान गया था कि ज़िन्दगी में हम-जैसों का कुछ नहीं होने का। सारे जयमाल अटल दा के ही प्राप्य हैं। केवल मैं ही क्यों, सारा बड़ामतल्ला यही सोचता था। लोग प्रशंसा-भरी नज़रों से अटल दा को देखते। आपस में कहते—कितना अच्छा लड़का है! किसी प्रकार का ऐब नहीं, घमण्ड नहीं। विद्या में कितनी प्रतिष्ठा पाई है, फिर भी कैसा मीठा स्वभाव है। कुछ सालों के बाद तो यह लाखों में खेलेगा। आशु बाबू का मान बढ़ाएगा। बड़ामतल्ले का गौरव बनेगा।

पढ़ना-लिखना ही जब इस दुनिया में मान एवं प्रतिष्ठा की एकमात्र कसौटी है, फिर तो अटल दा का कहना ही क्या।

मोहल्ले के कई हितैषी आशु बाबू को आकर कहते—आप अपने लड़के को विलायत भेज दीजिए। बैरिस्टरी पढ़ आएगा।

दूसरा कहता—रुड़की भेज दीजिए, इन्जीनियरिंग की पढ़ाई अच्छी पढ़ाई है।

तीसरा कहता—पैसा तो डाक्टरी में ही अधिक कमा सकता है, और सच पूछा जाए तो देश में अच्छे डाक्टर हैं ही कितने?

आशु बाबू बोलते—मैं क्या कह सकता हूं, भाई! लड़के की पढ़ाई में मुझे तो अभी तक एक पैसा भी नहीं खर्चना पड़ा। अपनी स्कालर-शिप के पैसों से ही अटल ने पढ़ाई-लिखाई की है। इसलिए उसका जिस

तरफ भी रुझान है, वह वही पढ़े—मैं अपनी तरफ से कुछ नहीं कहना चाहता।

—लड़के का रुझान है किस तरफ? किसीने पूछा।

बासु बाबू बोले—उसकी इच्छा तो कालेज में पढ़ाने की है।

—लेकिन प्रोफेसरी से आखिर कितना कमा सकेगा?

यह उस समय की बात है जब हम लोग आई० ए० पास करने के बाद बी० ए० में पढ़ रहे थे।

अचानक ही एक दिन सुना, अटल दा की शादी होनेवाली है। अटल दा तब तक एम० ए० की परीक्षा में फर्स्टक्लास फर्स्ट आकर विलायत जाने की तैयारी कर रहे थे।

अटल दा की शादी की खबर चारों तरफ फैलते ही लोग खुशी के मारे झूम उठे। सुनने में आया, लड़की अलीपुर के रईस घराने की है। उस आलीशान मकान को दूर से कई बार हम लोगों ने देखा भी था। यह भी सुनने में आया कि बड़ा बाजार में लड़की के बाप का लोहे का कारोबार है। परिवार छोटा है। पति-पत्नी और इकलौती बेटी। चूंकि अटल दा गुणी और अच्छे लड़के थे इसलिए गरीब होने पर भी लड़की के मां-बाप अपनी लड़की का यह रिश्ता करने में नहीं हिचकिचाए। अटल दा के विलायत जाने का खर्चा भी लड़कीवाले ही दे रहे थे। बाद में उनके बाद उनकी सारी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी भी अटल दा ही बनते।

सच! मनुष्य के जीवन में कब किसका भाग्योदय होता है, कोई नहीं कह सकता।

न अटल दा ही कुछ जानते थे और न उनकी पत्नी को ही कुछ मालूम था। बदामतल्ले के लोगों को भी कुछ मालूम नहीं था, न हम लोग ही कुछ जानते थे।

घटना घटल दा की शादी के दिन घटी।

इन्दुमेरा देवी की दरख्वास्त, उसका चेहरा, मांग में सिन्दूर और सिर पर आंचल ने मुझे हतप्रभ कर दिया था। दुनिया में इतने लोगों के रहते हुए भी उसकी दरख्वास्त पर निर्णय का भार मुझ पर ही पड़ा—सच में यह भी एक आश्चर्य की बात थी।

अटल दा का निर्णायक मैं कैसे बन सकता था!

मैं अटल दा का भाग्यनियन्ता बनूंगा, यह भी एक अजीब परिहास था। आज अगर अटल दा सामने होते तो मैं उन्हें समझा-बुझा लेता। इस प्रकार के परिहास का आखिर अर्थ क्या है ? क्यों ऐसा होता है ?

अटल दा में किस चीज की कमी थी ? प्रतिभा ? प्रतिष्ठा ? बुद्धि या ज्ञान— किस चीज का अभाव था उनमें ?

आखिरी बार जब मैं अटल दा से मिला था, मेरी आंखें गीली हो उठी थीं। अटल दा का अटूट स्वास्थ्य टूट चुका था। छाती की एक-एक हड्डी गिनी जा सकती थी।

चारशिला के टीन के छप्पर वाले मकान के बरामदे में बैठकर अटल दा एक कटोरी में मुढ़ी खा रहे थे।

मुझे देखकर अटल दा खुश होकर बोले—तू तो अब बड़ा आदमी बन गया है रे ! बड़ा नाम हुआ है तेरा। इससे मुझे बड़ी खुशी हुई है।

मैंने पूछा—पर तुम्हें क्या हो गया है, अटल दा ?

अटल दा ने कहा—क्यों ? कुछ भी तो नहीं।

मैंने कहा—तुम्हारी सेहत इस कदर कैसे बिगड़ गई ?

अटल दा बोले—यह कुछ नहीं। मेरा मन नहीं टूटा है रे। मन हो तो सब कुछ है।

—तुमसे हम लोगों को बड़ी आशा थी, अटल दा। तुम हमारे गौरव थे। तुम महान बन सकते थे···

अटल दा मुड़ी फांकते-फांकते रुक गए। फिर पुकारा—अरी ओ सुनती हो ? कहां गई ?

मैं आस-पास ताक रहा था। अचानक कमरे के अन्दर से अटल दा की पत्नी निकल आई।

अटल दा बोले—तेरी भाभी है। पैर छुओ...

मेरा मन तिक्त हो गया। इसे प्रणाम करना पड़ेगा। मैंने उसकी ओर आंखें उठाईं।

काली, दुबली-सी लड़की। हाथ में सोने की दो चूड़ियां। मुझे लगा, खाना बनाते-बनाते रसोई से उठकर आई थी। मिल की एक मोटी साड़ी बंधी हुई थी।

मैंने हाथ उठाकर प्रणाम किया।

अटल दा ने अपनी पत्नी से कहा—इसका नाम सुनने पर तुम पहचान जाओगी। हमारे बदामतल्ले का लड़का है। यहां किसी साहित्य-सभा में सभापति बनकर आया है। फिर मुझसे पूछा—मुड़ी खाओगे ?

गरीबी के कारण नहीं, मैली साड़ी या टीन के छप्पर के लिए भी नहीं, सही कारण क्या था—इतने दिनों बाद भी नहीं कह सकता, पर मुझे लगा था कि इनकी ऐसी हालत में मेरा न आना ही शायद ठीक होता।

मेरा मन अटल दा को ऐसी स्थिति में देखकर रो उठा था। बदामतल्ले के सभी लड़कों के आदर्श अटल दा घाटशिला में एक मास्टर बनकर गुज़ारा कर रहे हैं—यह देखकर भी यकीन नहीं आता था। अटल दा क्या नहीं बन सकते थे ? कितनी सम्भावनाएं थीं उनमें ! उनका ससुर धनी था। काफी पैसों के मालिक बन सकते थे, अटल दा। आखिर बड़ा-बाज़ार के लोहे के कारोबार के उत्तराधिकारी अटल दा ही तो थे। फिर क्यों अटल दा को सब कुछ खोना पड़ा। यह क्या सिर्फ उनका दुर्भाग्य ही था ? और कुछ नहीं ?

पर, अटल दा की शादी के पहले दिन तक किसीको कुछ मालूम नहीं था।

हम लोग भी बेखबर थे।

डायरी न लिखने के कारण तारीख नहीं बता सकता, पर याद है, शादी की रात बड़ामतल्ले के करीब सभी लोग भोज में शामिल होने के लिए दौड़े थे। धनी घर में शादी—नौबत, बाजा, बैंड पार्टी, शहनाई सभी एकसाथ बज रहे थे। सड़क फूलों की माला से सजाई गई थी। कतार से मोटरगाड़ियां खड़ी थीं। हम कुछ लड़के बराती थे। बड़ामतल्ले से अलीपुर ज्यादा दूर नहीं। हम लोग बस में शोर मचाते, खुशी से उछलते हुए पहुंचे थे। अटल दा भी गाड़ी में वर बनकर, फूलमाला पहने, सेहरा बांधे, सजे-धजे बैठे थे। साथ ही आशु बाबू, पुरोहित और कई अन्य सज्जन भी थे। पर मुझे ऐसा लगा, जैसे अटल दा थोड़े घबराए हुए हैं।

आशु बाबू बोले—अटल नाराज हो रहा था। कह रहा था इतना दिखावा करने की क्या जरूरत थी!

अटल दा अपनी शादी के पहले दिन तक अपनी शादी के बारे में कुछ नहीं जानते थे। वह रांची गए हुए थे। रांची से उन्होंने हमें एक चिट्ठी भी लिखी थी। चिट्ठी में उन्होंने लिखा था—अपनी जाति को ऊपर उठाना पड़ेगा, अपनी कमजोरियों पर काबू पाना होगा। हमारी रीढ़ टेढ़ी हो गई है, इसे सीधी करना होगा। देश के नवयुवक यदि सचेष्ट न हों तो हम बिलकुल पीछे रह जाएंगे। दूसरे देश इतनी तरक्की कर रहे हैं। तुम भी आदमी बनो। वचन और कर्म में एक रहो। यहां तुम लोगों से दूर रहकर मैंने अनुभव किया कि यहां के लोग कितने परिश्रमी हैं, कितनी एकता है इनमें। हममें इसी चीज की कमी है। मैं लौटकर आऊंगा तो नये सिरे से क्लब को व्यवस्थित करूंगा। हमें नये ढंग से सोचना पड़ेगा, यदि प्राप्त शिक्षा को हम सार्थक न कर सकें तो जीवन व्यर्थ है। और भी बहुत-सी बातें अटल दा ने लिखी थीं।

मैंने पूछा था—कल तो तुम्हारी शादी है, अटल दा?

—शादी? अटल दा मानो चौंक उठे। फिर अनमने-से होकर मकान के अन्दर चले गए। उसके बाद मकान के अन्दर क्या हुआ, यह, मुझे मालूम नहीं। हम लोग तो सिर्फ शादी वाले दिन सज-धजकर

बराती बनकर भोज के लिए चल दिए थे। जाते ही वर्दी पहने हुए बेयरों ने हमें एक-एक गिलास शरबत पकड़ा दिया। एक-एक बेयरे के हाथ में एक ट्रे थी। किसी में पान, किसी में सिगरेट-दियासलाई, किसी ट्रे में आइसक्रीम थी। बदामतल्ले के प्राय: सभी लोग मौजूद थे। आशु बाबू के इकलौते लड़के की शादी थी, इस खुशी में वह सबको शामिल करना चाहते थे। लड़की वाले धनी थे, दस-बीस लोग ज्यादा भी खा जाएं, तो उन्हें फर्क ही क्या पड़ता !

अटल दा को कीमती गलीचे वाले सिंहासन पर बैठाया गया। वह और भी सुन्दर दीख रहे थे। सभीकी आंखें बार-बार अटल दा पर ही पड़ रही थीं।

पुरुष हो तो ऐसा ! सिल्क का कुर्ता पहनकर अटल दा मानो सभा की रौनक बढ़ा रहे थे।

थोड़ी देर में अटल दा को मण्डप में बुलाया गया। पहले जयमाल की रस्म पूरी होनी थी—फिर कन्यादान। शंख बजने लगे। शादी शुरू हो गई। इसी बीच हम लोगों को खाने के लिए बुलाया गया। मकान से लगे बगीचे में टेबल-कुर्सियां लगाई गई थीं। चाप, कटलेट, तरह-तरह की मिठाइयां, पूरी, भाजी, खाने की विविध सामग्री वहां भरी पड़ी थी। अटल दा के ससुर पैसेवाले आदमी थे। जिस तरह अटल दा पर हम लोगों का अधिकार था, उसी तरह उनकी ससुराल पर भी था। बड़े-बड़े गरम कटलेट हम लोग एक ही बार में निगलते जा रहे थे। अटल दा इतने बड़े मकान और इतनी विशाल सम्पत्ति के मालिक बनेंगे, मोहल्ले वाले इसे हक्का-बक्का होकर देख रहे थे। देखना वाजिब भी था। ऐसा पुत्र-भाग्य कितने पिताओं को प्राप्त होता है ? अटल दा का सौभाग्य हमारा ही सौभाग्य था। अब अटल दा के साथ-साथ हमारे क्लब के भी दिन फिर जाएंगे। क्लब का अपना मकान होगा, क्लब के मेम्बर भी बढ़ जाएंगे। बदामतल्ले के अलावा भवानीपुर, कालीघाट, एलगिन रोड के लड़के तक आकर हमारी खुशामद करेंगे कि हम उन्हें इस क्लब का मेम्बर बना लें। खाते-खाते हम सब ये ही बातें सोच रहे थे कि अचानक—

अचानक अन्दर से बड़ा शोरगुल सुनाई पड़ा। किसी ने किसीको चिल्लाकर पुकारा।

विवाह-मण्डप में मंगल-शंख बज रहा था, कन्यादान की रस्म पूरी होने ही वाली थी कि शोर-शराबे के कारण एकाएक सब कुछ ठप्प पड़ गया।

जो लोग खाना परोस रहे थे, वे दही देते-देते वहां गायब हो गए, फिर लौटकर आए ही नहीं।

कमल दा ने खाते-खाते कहा—अरे, मिठाई सब कहां गई? इतनी मिठाइयां बनी थीं?

विजु दा ने कहा—अन्दर से न जाने किस बात का शोरगुल सुनाई पड़ रहा है।

हमने अभी तक उस तरफ ध्यान ही नहीं दिया था। शादी में तो हल्ला-गुल्ला होता ही है, नहीं तो लगता ही नहीं कि शादी हो रही है। कितने लोग-बाग, अतिथि, रिश्ते-परिवार वाले, बराती—शोर नहीं होगा तो क्या होगा! पर हमलोग खाने की पंगत में बैठे ही रहे। न तो कोई कुछ देने ही आया और न ही पूछने।

अटल दा के पिताजी भानु बाबू को मैंने दूर से आते देखा। भानु बाबू बड़े उत्तेजित लग रहे थे। उनके पीछे-पीछे कुछ लोग और भी उसी तरफ जा रहे थे। हम लोगों के साथ खाने वालों में से कई जने उठकर उनकी तरफ चल दिए।

हम लोगों को भी लगा, बस अब उठना चाहिए।

विजु दा बोले—अबे चल उठ। देखें तो आखिर मामला क्या है। लगता है कोई मामूली बात नहीं।

हड़बड़ाकर हम लोग उठ खड़े हुए।

मार्बल पत्थर का बना आलीशान मकान रोशनी से जगमगा रहा था। मकान के ठीक सामने बगीचा था। बगीचे से निकलते ही पोर्टिको, और पोर्टिको से लगे ही ऊपर जाने की सीढ़ी थी। सारा मकान फूलों

से सजा था। वातावरण खूशबू से भरा था।

औरों की देखादेखी हम लोग भी सीढ़ी के ऊपर चढ़ गए। सभी उत्तेजित, घबराए हुए-से थे। विशु दा बोले—मामला जरूर कुछ सीरियस है। सामने जाऊं भी कैसे! आगे तो खचाखच भीड़ है।

किसी तरह भीड़ में से हम लोग आगे निकल ही गए। हाल के दरवाज़े के सामने भीड़ थी। कमरे के अन्दर से हवन की सुगन्ध आ रही थी। मुझे लगा अटल दा की भी आवाज आ रही थी। उसके साथ ही किसी औरत की आवाज भी सुनाई दी।

मुझे बड़ा कुतूहल हुआ। मैंने भीड़ में धक्कम-धुक्की कर कमरे के अन्दर जाने की कोशिश की।

विशु दा बोले—तुम लोग मेरे पीछे-पीछे चले आओ।

कमल दा भी मेरे पीछे-पीछे आए। अन्दर झांकते ही मैं हतप्रभ रह गया।

कन्यादान की रस्म तब तक शायद पूरी नहीं हुई थी। हवन के सामने लाल बनारसी साड़ी पहने नई दुल्हन अटल दा के हाथ पर हाथ रखकर बैठी थी। पुरोहित मन्त्र पढ़ रहा था। लड़की के पिता टसर सिल्क के कपड़े पहनकर कन्यादान कर रहे थे। आशु बाबू सामने खड़े थे। और हम लोगों ने देखा, सबके सामने एक और भी लड़की खड़ी थी। उसके भी सिर पर आंचल था। एक सूती साड़ी पहन रखी थी। हम लोग सिर्फ उसके पीछे का ही हिस्सा देख पा रहे थे। चेहरा नहीं दिखाई पड़ रहा था।

हम थोड़ा किनारे पर सरक आए। अब पूरा चेहरा दिखाई पड़ रहा था। सिर्फ चेहरा ही नहीं, मैंने झटके में उसे आपादमस्तक देख लिया।

उस लड़की के दोनों हाथों में एक-एक चूड़ी थी। कानों में मामूली-से सोने के झुमके। पतली काली-सी वह लड़की विवाह-मण्डप के सामने खड़ी थी, पर उसकी आंखों से मानों आग धधक रही थी।

मैंने पूछा—यह लड़की कौन है, विशु दा?

विशु दा बोले—चुप रह! सुनने भी दे।

लड़की बोल रही थी—यह मेरे पति हैं।

आशु बाबू बोले—कौन तुम्हारा पति है ? अटल ?

—जी ! उनके साथ मेरी शादी हुई है।

—शादी ? आशु बाबू भनक उठे। बेचारे भलेमानस आशु बाबू, जिन्हें गुस्सा करते हुए आज तक बदास्तपुर के किसी आदमी ने नहीं देखा था। तुरन्त अपने को संभालकर उन्होंने कहा—यह तुम क्या कह रही हो बेटी ? तुम कौन हो ?

लड़की बोली—मेरी बात का यकीन न हो तो उन्हीं से पूछिए ?

आशु बाबू बोले—उनसे क्यों पूछना पड़ेगा ? अपने लड़के को मैं नहीं जानता ? मैंने कब उसकी शादी की थी कि तुमसे उसकी शादी हो गई ?

लड़की बोली—शादी आपने नहीं की थी। हम लोगों ने की थी।

– तुम लोगों ने शादी की है ?

—हां की है। विश्वास न हो तो आप अपने बेटे से पूछिए !

अब नई दुल्हन के पिता भी मण्डप से उठ खड़े हुए। बोले—तुम किसकी लड़की हो ? यहां क्या करने आई हो ?

लड़की बोली—आप लोगों ने मुझे खबर नहीं पहुंचाई है। खबर पाकर मैं स्वयं यहां दौड़ी आई हूं।

—पर, इस समय क्यों आई ? अब तो मेरी बेटी के साथ उसकी शादी हो भी गई है। पहले आकर क्यों नहीं कहा ?

—पहले कैसे आती ? आप लोगों ने मुझे खबर दी थी क्या ?

कन्या-पक्ष वाले हंस पड़े। बोले—अजीब बात करती हो। तुम क्या सोचती हो कि पहले मालूम रहता तो तुम्हें सूचित नहीं करते ?

आशु बाबू भी नरम पड़कर बोले—बेटी, अब तुम यहां से जाओ ! तुम्हें जो कुछ कहना है, अटल को घर जाकर कहना। बस यहां से लड़की विदा होगी। अटल नई दुल्हन के साथ घर ही आएगा। वहीं आकर तुम उससे कुछ समझ-बूझ लेना।

लड़की बोली मैं तब तक प्रतीक्षा नहीं कर सकती। मैं आज ही उनसे निपटूंगी।

दुल्हन के पिता अब अपना धैर्य खो बैठे। बोले—हमारा कहना

सीधे ढंग से नहीं मानोगी, तो हमें दूसरे तरीके अपनाने पड़ेंगे।

लड़की भी आपे में नहीं थी। बोली—जो चाहे कीजिए। मैं भी देखना चाहती हूं कि आप क्या करते हैं।

कन्या-पक्ष वालों ने अब आशु बाबू से पूछा—क्यों समधी, क्या किया जाए, आपकी क्या राय है ?

आशु बाबू ने उस लड़की को समझाकर कहा—क्यों शुभ काम में हंगामा कर रही हो, बेटी। अभी-अभी तो कन्यादान समाप्त हुआ है—अभी भी कुछ रस्में बाकी हैं। समधी दिन-भर का भूखा-प्यासा है, तुम बाद में आना। तुम्हारी बात मैं जरूर सुनूंगा।

हाथ जोड़कर मिन्नत करना ही आशु बाबू के लिए बाकी रह गया था। पर लड़की अचल-अटल पत्थर की तरह खड़ी रही। दुलहन के पिता ने गरजकर सिपाही को पुकारा—बहादुर! सारा मकान मानो कांप गया। इतनी गम्भीर आवाज थी उनकी। सारे बरातियों में एक क्षण के लिए हलचल मच गई। लगा, बस अब कुछ न कुछ होकर ही रहेगा।

कन्यादान खत्म हो चुका था। पुरोहितजी ने शेष दो-चार बूंदें घी की हवन पर छिड़ककर अपने हाथ पोंछ डाले। हाल में बरातियों, रिश्तेदारों, मुहल्ले वालों, वहां रहनेवालों और न भी रहनेवालों की भीड़ में एक अजीब घुटनभरी स्थिति पैदा हो गई। न जाने क्या सर्वनाश हो—सभी यही देखने के लिए उत्सुक थे।

दुलहन का कोई भाई नहीं था, तो क्या हुआ, उसके बाप के पास पैसे का बल था, आदमियों का बल था। उफ! क्या भयावह दृश्य था! अटल दा! हमारे अटल दा की यह करतूत! सिर्फ अटल दा ही नहीं—उनके साथ-साथ हम लोग भी पत्थर बन गए थे। अटल दा की तरह हम लोगों के मुंह से भी कोई शब्द नहीं निकल रहा था। मैं उदास, विस्मित आंखों से देख रहा था, सोच रहा था। हमारे अटल दा, बदामतल्ले के गौरव, सभी छात्रों के आदर्श, उनके नाम पर इतना बड़ा कलंक! क्या यह सम्भव हो सकता था! गंगा में गर्दन तक डूबकर भी उनके नाम पर कोई कुछ कहे तो हम विश्वास नहीं कर सकते थे।

कमल दा बोले—यह लड़की जरूर किसी बुरे मतलब से आई है।

विनु दा ने कहा—यहां से भगा देने में ही खेल खत्म। मुझे भी बड़ा गुस्सा आ रहा था। यह लड़की अटल दा का पूरा जीवन बर्बाद करने पर तुली है। ऐसी कुरूप, काली लड़की अटल दा की पत्नी नहीं हो सकती। सोचते ही घृणा से मितली आने लगी। और ठीक उसीके सामने बनारसी साड़ी पहने, हवन की आग से नई दुलहन का लाल-लाल दिव्य चेहरा आंखों के सामने स्पष्ट हो उठा। कितनी सुन्दर दिख रही थी वह !

भीड़ से भिनभिनाहट की आवाज आने लगी। भिनभिनाहट धीरे-धीरे शोर में बदल गई। तरह-तरह की बातें सुनने में आ रही थीं।

कोई कह रहा था—यह लड़की नम्बरी बदमाश है। बदमाशी की और कोई जगह नहीं मिली ?

—मारकर भगा दो न···

रिश्तेदारों में से किसीने कहा—हम पुलिस में टेलीफोन कर रहे हैं।

दुलहन के पिता के लिए ऐसा अपमान बर्दाश्त के बाहर था, उन्होंने आशु बाबू से कहा—समधी, आप ही बताइए, क्या करना चाहिए ?

आशु बाबू बोले—आप थोड़ी देर और ठहर जाइए, मैं एक बार फिर लड़की को समझाकर कहता हूं।

वह लड़की अनमनी-सी चुपचाप खड़ी थी।

आशु बाबू बोले—बेटी, मैं अटल का बाप हूं। मैं कह रहा हूं, तुम्हारी सारी बातें मैं कल सुनूंगा। अब तुम यहां से जा सकती हो। यहां शोर करने से कोई लाभ नहीं होगा।

लड़की बोली—मैं यह शादी नहीं होने दूंगी।

आशु बाबू बोले—लेकिन कन्यादान तो हो चुका है। कन्यादान का मतलब ही है शादी हो जाना।

लड़की बोली—नहीं। यह शादी नहीं हुई है।

किसीने व्यंग्य से कहा—तुम्हारे कहने से नहीं हुई ? निकल यहां से !

आशु बाबू इशारे से उसे चुप रहने के लिए कहकर बोले—शादी नहीं हुई है, कहने का मतलब ?

लड़की बोली—क्योंकि इसी वर के साथ पहले एक बार मेरी शादी हो चुकी है।

—कब हुई ?

अब लड़की भी धैर्य खो चुकी थी। बोली—आपको सबूत चाहिए ?

आशु बाबू के धैर्य की भी दाद देनी चाहिए। बोले—मान लिया कि तुम्हारी शादी हुई है। पर, तुम कोई सबूत दिखाओगी और मैं मान जाऊंगा, यह भी तो नहीं हो सकता। उसके लिए भी तो गवाह चाहिए, तुम किसकी लड़की हो ? यह सब भी तो हमें जानना चाहिए।

लड़की बोली—मैं सब कुछ कहने के लिए तैयार हूं।

—तुम्हारे तैयार होने पर क्या होता है। अभी हमारे पास इतना वक्त नहीं है। अभी तो बरातियों का खाना भी नहीं हुआ...

लड़की बोली—जो होना है वह आज ही तय होगा। कल की बात मैं नहीं जानती।

—खैर। बताओ। क्या नाम है तुम्हारे पिताजी का ? तुम्हारा गोत्र क्या है ?

लड़की भयंकर रूप से उत्तेजित हो उठी। बोली—देखिए, मैं गोत्र-बोत्र कुछ नहीं जानती। जानना भी नहीं चाहती। मैं सिर्फ इतना जानती हूं कि हम दोनों की शादी हुई है। मैं बहुत दूर से आ रही हूं। आखिरी क्षण में मुझे खबर मिली, इसलिए हांफती-दौड़ती-भागती आई हूं। मैंने अभी तक कुछ खाया नहीं है।

—खाना खाने का अवसर तो हमें भी नहीं मिला है। दिन-भर का उपवास है, यह तो मालूम ही होगा तुम्हें ?

लड़की बोली—आप लोगों ने उपवास किया है या नहीं, यह तो आप ही बता सकते हैं। मुझे जानने की कोई ज़रूरत भी नहीं है।

—तो फिर बताओ, अब तुम क्या चाहती हो ?

लड़की बोली—मैं उन्हें यहां से उठाकर ले जाऊंगी।

अब आशु बाबू अपने को नहीं रोक सके। बोले—तुम्हारी यह हिम्मत ! दुलहन के बाप के क्रोध का भी पार नहीं रहा। किसी रिश्तेदार ने कहा—पुलिस में फोन कर दूं, ताऊजी ? इस मामूली-सी लड़की की हिम्मत देखकर हैरान हो रहा हूं।

पर तब तक वह लड़की एक और तमाशा कर बैठी। अचानक वह

अटल दा का हाथ पकड़कर बोली—तुम उठो, यहां से चलो। अटल दा सर झुकाए जिस तरह बैठे थे, उसी तरह बैठे ही रहे। उठने की शायद हिम्मत नहीं रह गई थी उनमें। लड़की हाथ पकड़कर अटल दा को खींचने लगी।

बोली—उठो! चलो! चलो मेरे साथ! मुझे तुमने खबर तक नहीं दी? क्या सोचा था तुमने, कि मुझे कुछ पता ही नहीं लगेगा? अच्छा हुआ कि समय पर मुझे पता चल गया। तुम आज मेरा सर्वनाश करने पर तुल गए थे?

हम विमूढ़ अवाक सब कुछ देख रहे थे। हम लोगों का तो गला ही सूख गया था। मैं सोच रहा था, क्या सचमुच ही अटल दा ने इस कुरूप, काली-कलूटी लड़की से शादी की है? अगर की है तो क्यों? किस मोह से? अन्त में अटल दा के लिए इस तरह से हम लोगों के चेहरे पर कालिख पोतना ही बाकी था?

तभी दुलहन के पिता फिर चिल्लाए—बहादुर!

६

उस समय मेरे पास डायरी नहीं थी। दिन, तारीख और उस क्षण का हिसाब नहीं दे सकता। केवल इतना याद है कि उस दिन अटल दा की शादी की रात हम बराती लोग शर्म से गड़ गए थे। अटल दा ने यह क्या किया? इस तरह कहीं अपने को छोटा किया जाता है! साथ में हम लोगों को भी नीचा दिखाया!

याद है—१६४२ में। उस घटना के बहुत साल बाद जिस दिन अटल दा के साथ मेरी भेंट हुई थी, लज्जा और शर्म से काफी देर तक मैं यह बात भूल नहीं सका था।

पार्कसर्कस में मैं किसी सभा का सभापति बनकर गया था। देश में उस समय अकाल चल रहा था। कलकत्ता पर बम गिराए जा रहे थे। कलकत्ता के लोग बेसहारा थे। नागरिक इधर-उधर भागकर जान बचा रहे थे। पर उस समय भी सभाएं हो रही थीं। लड़कों की ज़िद के आगे

मुझे घाटशिला जाना ही पड़ा था ।

घाटशिला को बंगाल का ही एक छोटा-सा टुकड़ा कहना गलत नहीं होगा । घाटशिला के ही किसी स्कूल की मीटिंग में मैं बुलाया गया था ।

सभा का संचालन मैंने विधिवत् किया था । मैंने अपना पारम्परिक टिपिकल भाषण भी दे डाला । मेरे गले में फूलमालाएं थीं, लोगों ने मेरी फोटो भी ली । सभा का सारा काम अच्छी तरह सम्पन्न हुआ था । पर लौटते समय एक घटना घटी ।

स्कूल के सीनियर टीचर अक्षय बाबू बोले—हमारे हेडमास्टर साहब के साथ आपका परिचय नहीं हो सका । वह बुरी तरह बीमार हैं । उनसे मिलकर आपको खुशी होती ।

मैंने पूछा—वह कौन हैं ?

अक्षय बाबू बोले—वह इस स्कूल के प्राण हैं । पर इस समय वह बहुत ही बीमार हैं । उन्हींकी कोशिश से स्कूल की इतनी तरक्की हुई है ।

उसके बाद थोड़ा रुककर बोले—यह देखिए, यह उनकी तस्वीर है ।

मैंने आंखें ऊपर कीं । दीवार पर फ्रेम में मढ़ी हुई एक तस्वीर टंगी थी । देखते ही मैं चौंक उठा । यह तो हमारे अटल दा थे ।

मैंने पूछा—आपके हेडमास्टर साहब का नाम क्या है ?

अक्षय बाबू बोले—अटलबिहारी बासु ।

आज याद कर सकता हूं । उस दिन टीन के छप्पर के नीचे बैठक... में अटल दा की गृहस्थी आंखें फाड़कर देख रहा था । एक टूटी मैली-... लालटेन, लकड़ी के एक छोटे तख्त पर देवी-देवताओं के चित्र । कमरे ... दूसरे किनारे पर एक तख्तपोश पड़ा था । उसपर एक फटी चटाई बि... हुई थी, सिरहाने पर एक मैला तकिया—और सारे तख्तपोश पर कित... बिखरी पड़ी थीं । तरह-तरह की किताबें—विचित्र विषयों पर—मैं क... क्या गिनाऊं ?

मौका देखकर मैं पूछ बैठा—अच्छा अटल दा···

अटल दा बोले—बोल न ! क्या बोलना चाहता है ?

मैंने कहा—तुम्हें दुख नहीं होता !

—दुख ?

मेरी तरफ ताककर पहले अटल दा मानो थोड़ी देर के लिए अवाक रह गए। पहले तो मैं खुद ही नहीं समझ सका था, पर शायद मैं अपने आंसू सफलतापूर्वक नहीं छिपा पाया था। इस घोर दारिद्र्य और धूमिल वातावरण में मेरा मन घबरा उठा था। कहां तो अलीपुर के बगीचे वाली कोठी के मालिक होने की बात थी। विलायत जाकर बैरिस्टर बनने की हवा थी। बचपन से अटल दा की मैंने मन में यही तस्वीर बनाकर रखी थी। और क्या यह सिर्फ मैं अपनी बात बता रहा हूं ! बदामतल्ले के सभी लोगों के मन में तो यही बात थी। सभी जानते थे कि आशु बाबू जैसा पुत्र-भाग्य सबको नसीब नहीं होता। आशु बाबू विलक्षण सन्तान के पिता हैं। अटल दा के महान होते ही आशु बाबू के दुख के बादल छंट जाएंगे। थैला लेकर उन्हें तब बाज़ार नहीं दौड़ना पड़ेगा। आशु बाबू की भी बड़ी-सी कोठी बनेगी। लड़के के कारण लोगों में आशु बाबू का मान बढ़ेगा, लेकिन•••

उस घटना के कितने दिनों बाद देखा, अटल दा का पुराना टूटा मकान और भी टूटने लगा था। पलस्तर झर रहा था। कई बार अटल दा के घर के पास से गुज़रते समय मैं एकाएक रुक जाता। अटल दा के उस कमरे की तरफ देखता। अब कमरे की खिड़कियां अन्दर से बन्द ही रहती थीं। अटल दा के जाने के बाद एक दिन के लिए भी उन खिड़कियों को नहीं खोला गया था।

आशु बाबू ठीक पहले की ही तरह थैला लिए बाज़ार जाते थे। कभी-कभी मैं कहता—मुझे दीजिए चाचाजी, मैं घर पहुंचा आता हूं। पर वह नहीं देते। कहते—नहीं ! नहीं ! मैं पहुंच जाऊंगा। कैसे हैं तेरे बाबूजी ?

मौका देखकर मैं पूछता—आप कैसे हैं चाचाजी ?

आशु बाबू कहते—मैं ! मैं अच्छा ही हूं।

मैं फिर पूछता—आजकल अटल दा कहां हैं ?

आशु बाबू कहते—क्या पता बेटा, कहां है ? मुझे तो खबर तक नहीं भेजता।

कभी-कभी मैं अटल दा के घर भी चला जाता था। चाची खाना बना रही होतीं। आहट पाकर पूछतीं—कौन है ?

—मैं हूं चाची।

चाची कहतीं—आओ बेटा, हमारी याद कैसे आ गई ?

जवाब में मैं कुछ भी नहीं बोल पाता।

चाची फिर स्वयं ही कहतीं—अटल से मिलने आए हो, पर वह तो है नहीं।

—वह तो है नहीं। वह तो है नहीं। सारे मकान में एक ही स्वर गूंजता—वह नहीं है ! अटल दा नहीं है, यह बात हम लोग भूल नहीं पाते थे। पर धीरे-धीरे जिस तरह सब कुछ सह जाता है, उसी तरह एक दिन यह भी सह गया।

आशु बाबू, चाची, सभी अटल दा को भूल गए। हम भी भूल गए। न भूलने पर काम भी कैसे चलता ! जीने के लिए आदमी को बहुत कुछ भूलना जो पड़ता है।

कभी-कभी देखता, पार्क के अन्दर से आशु बाबू लाठी टेकते-टेकते कहीं जा रहे हैं। बाद में तो उनकी यह हालत हुई कि उनके सामने से गुज़रने पर भी वह नहीं पहचान पाते। आंख से साफ दिखाई नहीं पड़ता।

मैं उनके सामने जाकर पैर छूकर प्रणाम करता।

वह पूछते—कौन हो बेटा तुम ?

मैं पूछता—अटल दा की कोई खबर मिली, चाचाजी ?

—ओ, तुम हो ! नहीं बेटे, कोई खबर नहीं मिली।

मैं कहता—आप किसी अखबार में विज्ञापन क्यों नहीं देते चाचाजी !

आशु बाबू हंसते। कुछ बोलते नहीं।

इसी तरह एक दिन सुबह-सुबह खबर मिली कि चाची मर गई हैं। हमीं लोग उन्हें श्मशान ले गए। लड़का था नहीं, इसलिए मुखाग्नि भी मुझे ही देनी पड़ी। अटल दा के रहते भी मुझ पराये के हाथ चाची की अन्त्येष्टि हुई। उसके बाद फिर जिस गति से दुनिया चल रही थी, चलने लगी।

आशु बाबू अब भी कभी-कभार लाठी लेकर घूमने निकलते थे।

बोलते—मुझे किस बात का दुख है, बेटा! मैं क्यों दुख मनाऊं!

मैं कहता—पर अटल दा का यह कैसा आचरण? इतनी बड़ी बात हो गई और उन्होंने खबर तक नहीं ली।

. आशु बाबू हंसते। बोलते—नहीं लेता है तो न ले, बेटा! उसमें क्या है? मैं तो अपने मन को यही समझाता हूं कि मेरे कभी लड़का हुआ ही नहीं। सोचूंगा लड़का था भी तो मर गया।

७

घाटशिला में अटल दा के पास बैठकर मुझे वही पुरानी बातें याद आ रही थीं। जो इस कदर निर्दयी है उसपर अभियोग भी क्या लगाऊं? अटल दा की पत्नी एक कटोरे में चाय दे गईं।

अटल दा ने पत्नी से कहा—ऐ! सुनो···

अटल दा की पत्नी रुक गईं। मुझे तो उसकी तरफ आंख उठाकर देखने की हिम्मत भी नहीं पड़ रही थी। असल में आंख उठाने में भी मुझे घृणा-सी हो रही थी।

मैं सोच रहा था—सारे झंझट के पीछे यही तो औरत है।

गुस्से से भरी जुबान तक रुक गई थी।

: अटल दा ने अपनी तरफ से ही कहा था—यह तेरी मामी हैं। इनके पैर छू!

। इच्छा तो नहीं हो रही थी। फिर भी किया। पर केवल हाथ ही जोड़े।

भाभी ने कहा—आपकी लिखी किताबें मैं पढ़ती रहती हूं। आप अच्छा लिखते हैं।

मैं सिर झुकाए जिस तरह बैठा था, बैठा ही रहा। पर जब वह बहुत बोलने लगी तब मैंने अचानक पूछा—चाचा कैसे हैं यह तो तुमने पूछा तक नहीं, अटल दा ?

—चाचा ?

चाचा का नाम सुनते ही अटल दा चौंककर चुप हो गए।

मैंने कहा—तुम्हारे मन में दया, ममता कुछ भी नहीं, अटल दा ? तुम इतने पत्थर कब से बन गए ? तुम तो ऐसे नहा थे !

अटल दा मानो कुछ सोचने लगे। जैसे अचानक उन्हें घर की याद आ गई हो। एकाएक सारी स्मृतियां उमड़ आई हों। किताब के पन्नों को सहलाते हुए मन ही मन अटल दा कुछ बुदबुदाने लगे। मुझे लगा मैंने अनजाने में उनके मन के किसी घाव को कुरेद दिया है और उस टीस की यन्त्रणा से उनकी सारी अन्तरात्मा कराह उठी हो।

मैंने फिर कहा—बचपन से तुम हम लोगों के आदर्श थे, अटल दा। तुम्हें छोड़कर दूसरे आदर्श की बात हम जानते भी नहीं थे। यह सब तो तुम्हें मालूम था, अटल दा !

अटल दा अनमने होकर किताब के पन्ने उलटने लगे। कुछ कहा नहीं।

मैं कहता ही गया—मेरे साथ-साथ बदामतल्ले के सभी लड़कों ने शपथ खाई थी कि बड़े होकर हम तुम्हारी तरह बनेंगे। यह भी तुम्हें मालूम था !

अटल दा ने फिर भी कुछ नहीं कहा। मुंह लटकाए बैठे रहे।

मैंने कहा—तुम्हारे पिताजी और मां ने आखिरी समय में कितना कष्ट भोगा है, इसका तुम अन्दाज़ लगा सकोगे ? बोलो, जवाब दो···!

अटल दा ने अपना सिर ऊंचा नहीं किया। चुप ही रहे।

—पहले तो तुम ऐसे नहीं थे। अन्याय के विरुद्ध सबसे पहले तो तुम ही आवाज़ उठाते थे, सर ऊंचा कर उसका प्रतिवाद करते थे। कोई बुरा काम तुम्हारे बस का नहीं था···। अटल दा फिर भी चुप रहे।

मैंने कहा—मैं तुम्हें आज इस तरह चुप नहीं रहने दूंगा, अटल
तुम्हारे पैर पकड़ता हूं। मेरी बात का कम से कम कुछ तो जवाब
एक बार तो मुंह खोलो। तुम कुछ भी बोलो—पर बोलो जरूर।
तुम्हें सब बताना पड़ेगा कि यह सब क्यों हुआ? इसके लिए जिम्मे
कौन है? तुम किसके प्रति कौन-सा कर्तव्य निभा रहे हो? वह
है? क्या वह तुम्हारे मां-बाप से भी बड़ा है?

अटल दा मन ही मन मानो थोड़े चंचल हो उठे।

मैंने कहा—डरो नहीं, अटल दा। मैं तुमसे उसका नाम नहीं पूछना
चाहता···उसे कुछ कहूंगा भी नहीं···

अटल दा ने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिए।

बोले—सुन, आज तू मेरे पास रह जा।

मैंने पूछा—क्यों?

अटल दा बोले—तेरी सारी बातों का मैं जवाब दूंगा, पर आज
तुझे मेरे पास रहना पड़ेगा।

—तुम्हारे यहां रहूंगा, अटल दा?

—क्यों, बहुत काम है क्या?

—नहीं, काम की बात मैं नहीं कर रहा हूं। मन ही मन मैं चारों
तरफ की दशा देखकर संकुचित हो रहा था। कहां रहूंगा मैं? इस कमरे
? इस फटे बिस्तर और गन्दगी के राज्य में? कुल दो ही तो कमरे
। ऊपर से खाना बनाने की आवाज और सुगन्ध आ रही थी।

अटल दा फिर बोले—आज रह जा। यह देख, एक नई किताब
ली है। तुझे भी पढ़वाऊंगा।

नई किताब के लिए मेरे मन में कोई लालच नहीं था। किताब का
अटल दा को हो सकता है, पर मैं तो अटल दा का लोभी था। सब
रहते हुए भी अटल दा ने क्यों इस भयंकर दारिद्र्य को अपनाया?
लिए? किसके लिए? जिस काली-कलूटी लड़की को मैंने अलीपुर
ाह-मण्डप में देखा था उसका इतना बड़ा आकर्षण! इतना मोह!
में मिल की मैली साड़ी पहने हुए उसे आज भी तो मैंने फिर
। उसमें अटल दा ने आकर्षण लायक क्या पाया?

भाभी ने कहा—आपकी लिखी किताबें मैं पढ़ती रहती हूं। आप अच्छा लिखते हैं।

मैं सिर झुकाए जिस तरह बैठा था, बैठा ही रहा। पर जब वह बहुत बोलने लगी तब मैंने अचानक पूछा—चाचा कैसे हैं यह तो तुमने पूछा तक नहीं, अटल दा ?

—चाचा ?

चाचा का नाम सुनते ही अटल दा चौंककर चुप हो गए।

मैंने कहा—तुम्हारे मन में दया, ममता कुछ भी नहीं, अटल दा ? तुम इतने पत्थर कब से बन गए ? तुम तो ऐसे नहीं थे !

अटल दा मानो कुछ सोचने लगे। जैसे अचानक उन्हें घर की याद आ गई हो। एकाएक सारी स्मृतियां उमड़ आई हों। किताब के पन्नों को सहलाते हुए मन ही मन अटल दा कुछ बुदबुदाने लगे। मुझे लगा मैंने अनजाने में उनके मन के किसी घाव को कुरेद दिया है और उस टीस की यन्त्रणा से उनकी सारी अन्तरात्मा कराह उठी हो।

मैंने फिर कहा—बचपन से तुम हम लोगों के आदर्श थे, अटल दा। तुम्हें छोड़कर दूसरे आदर्श की बात हम जानते भी नहीं थे। यह सब तो तुम्हें मालूम था, अटल दा !

अटल दा अनमने होकर किताब के पन्ने उलटने लगे। कुछ कहा नहीं।

मैं कहता ही गया—मेरे साथ-साथ बदामतल्ले के सभी लड़कों ने शपथ खाई थी कि बड़े होकर हम तुम्हारी तरह बनेंगे। यह भी तुम्हें मालूम था !

अटल दा ने फिर भी कुछ नहीं कहा। मुंह लटकाए बैठे रहे।

मैंने कहा—तुम्हारे पिताजी और मां ने आखिरी समय में कितना कष्ट भोगा है, इसका तुम अन्दाज लगा सकोगे ? बोलो, जवाब दो···!

अटल दा ने अपना सिर ऊंचा नहीं किया। चुप ही रहे।

—पहले तो तुम ऐसे नहीं थे। अन्याय के विरुद्ध सबसे पहले, तो तुम ही आवाज उठाते थे, सर ऊंचा कर उसका प्रतिवाद करते थे। कोई बुरा काम तुम्हारे बस का नहीं था···। अटल दा फिर भी चुप रहे।

जो अटल दा ब्राह्ममुहूर्त में उठकर मन की शक्ति बढ़ाने के लिए दीवार पर अंकित बिन्दु को अपलक देखते थे, विवेकानन्द की लिखी ब्रह्मचर्य की किताब पढ़कर जिन्होंने अपना मन इतना दृढ़ किया था, उनकी यह अधोगति ! स्कूल के हेडमास्टर बने थे, यह तो अच्छी बात थी। बच्चों को आदमी बना रहे थे, यह भी अच्छी बात थी; पर अपने को उन्होंने क्या बना लिया ? क्या अटल दा दुनिया के सामने सर ऊंचा कर खड़े हो सकते थे ? बोल सकते थे कि मैंने जो कुछ किया है—उचित किया है, जो कुछ समझा है, ठीक समझा है !

मैं कहीं खो गया था।

अटल दा बोले—तेरी भाभी को कहे देता हूं कि आज तू यहीं खाएगा।

फिर चिल्लाकर पुकारा—सुनती हो !

अटल दा की आवाज सुनकर वह महिला फिर आई। अटल दा बोले—सुनो, आज यह मेरे साथ ही रहेगा, समझीं। मेरे कमरे में ही इसका बिस्तर लगा देना।

फिर मेरी तरफ देखकर अटल दा ने कहा—तुझे थोड़ा कष्ट तो होगा।

तभी भाभी ने पूछा—आप रात को रोटी खाते हैं या चावल ?

मैंने कहा—मेरे लिए परेशान होने की कोई बात नहीं ! जो आप लोग खाइएगा, वही मैं भी खा लूंगा।

भाभी हंस पड़ी।

बोली—आप हमारे कष्ट के बारे में सोच रहे हैं न ; पर औरतों को खाना बनाने में तकलीफ नहीं होती।

अटल दा बोले—इसके लिए बैंगन की भाजी बना देना।

भाभी बोली—तुम्हें बैंगन पसन्द है, इसलिए क्या सभीको भाएगा ?

मैंने रोककर कहा—नहीं भाभी ; आपकी जो मर्जी हो, बनाइए। खाने-पीने के मामले में मेरा कोई झमेला नहीं।

भाभी के जाने के बाद अटल दा ने फिर कहा—यहां तुझे तकलीफ तो होगी···

नहीं-नहीं। तकलीफ क्यों होगी ! तुम यह सोचो
अटल दा।

अटल दा बोले—आजकल यहाँ मच्छरों का बड़ा उपद्रव है।

मैंने कहा—कुछ भी हो अटल दा, पर आज मैं तुम्हारी
जरूर सुनूंगा। यह सब क्यों हुआ ? किसलिए तुम इस तरह
भागते फिर रहे हो ?

अटल दा बोले—मैं भागता फिर रहा हूं ! यह तुमसे किसने
दिया ?

मैंने कहा—क्या कह रहे हो अटल दा ! तुम भागे नहीं ? तुम्हा
पास जो शक्ति थी, जो क्षमता थी, प्रतिभा थी, उसके बल पर तुम
सबके प्रणम्य बन सकते थे। सबके लिए एक उदाहरण रख सकते
थे।

अटल दा मेरी बात सुनकर मुस्कराने लगे। बोले—क्यों, अब क्या
मैं सबकी नज़रों से गिर चुका हूं ?

मैंने कहा—और नहीं तो क्या ! ज़रा सोचो तो सही, तुम क्या बन
सकते थे ? तुम्हें किस चीज की कमी थी ?

सिर झुकाकर अटल दा कुछ सोचने लगे। बोले—आज रात तुझे
सारी बात बताऊंगा। तू तो आज यहीं रह रहा है न ?

८

मनुष्य सोचता कुछ है और होता है कुछ और। नहीं तो क्या मैं यह
…कता था कि इतने दिनों के बाद भेंट होने पर भी अटल दा की
सुनने से मैं वंचित रह जाऊंगा। उस दिन अलीपुर की उस सारी
…से ही सारी घटना रहस्य में ढकी पड़ी थी। और आज जब
…टन का मौका मिला तब भी स्कूल-मास्टरी के जीवन की आड़
…की कहानी फिर हमेशा-हमेशा के लिए मेरे लिए अजान रह
…ई बार अवकाश के क्षणों में मन ने पूछा है—क्या अटल दा

को जीवन में शान्ति मिली ? क्या अटल दा ने जीवन के किसी क्षण में मन ही मन पश्चात्ताप नहीं किया ? पर इन बातों को जानने का कोई उपाय नहीं था। उसके वाद कितनी ही वार मैं वाहर निकला हूं। घाटशिला के स्टेशन से भी कई वार गुज़रा हूं। कई वार मन में आया कि घाटशिला में उतर जाऊं, अटल दा से भेंट कर आऊं, पर उस वार जो कड़ुवा अनुभव लेकर लौटा था उससे फिर घाटशिला जाने की कभी हिम्मत ही नहीं पड़ी। चिट्ठी लिखकर अटल दा की कोई खवर लूं, इतना साहस भी मैं नहीं वटोर पाया। लेकिन क्यों ?

वही कहानी आज वताऊंगा।

अटल दा के कहने पर उस रात मैंने घाटशिला में रहने के लिए हां भर ली थी। एक ही कमरे में, एक ही तख्तपोश पर अटल दा के साथ रात विताऊंगा। उन्हींकी ज़वानी उनकी कहानी सुनूंगा—इस सवकी मन में बड़ी उत्सुकता थी।

थोड़ी देर तक वातचीत कर लेने के वाद हाथ-पैर धोने के लिए मैं वाहर के आंगन में जाकर वाल्टी किस तरफ है, यही देख रहा था कि इतने में भाभी आई।

मैंने पूछा—इस वाल्टी के पानी से हाथ-पैर धो सकता हूं, भाभी ?

भाभी वोली—हां, पर आप यहां आए क्यों ?

उसके गले की आवाज़ सुनकर मैं चौंक उठा। इतनी ही रूखी आवाज़ थी उसकी।

भाभी वोलीं—आप लोग क्यों मेरे घर आते हैं ? क्यों ? जवाव दे सकते हैं ?

मैं हैरान होकर भाभी की तरफ देख रहा था। अंधेरे में भी उसका नाराज़ और उत्तेजित चेहरा मैं अनुभव कर रहा था। वह वोली—सव लोग मिलकर मेरा सर्वनाश करने आ जुटते हैं ? हमने आप लोगों का क्या विगाड़ा है ? मैंने कौन-सा अपराध किया है ?

मैंने कहा—मैं कुछ समझा नहीं कि आप मुझे क्या कह रही हैं ?

भाभी बोली—हां, मैं आप सबों को कह रही हूं। आप लोग मिलकर मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे हैं। हमने किसका क्या बिगाड़ा … मैं अपने पति के साथ यहां गृहस्थी निभा रही हूं, यह भी आप लोगो… नजर में गड़ना है।

मैंने फिर कहा – यह सब आप क्या कर रही है?

वह बोली—क्यों? आप कुछ समझते नही या मेरी गृहस्थी का हाल देखकर समझना नही चाहते? शरीर पर यह फटी मैली साड़ी, 'यह… टूटा तख्तपोश, यह गन्दी मच्छरदानी, आपकी किसी पर नजर नहीं पड़ी? आपके पास आंखें नहीं हैं? यह सब देखने के बाद भी यहां रहने और खाने के लिए आपने 'हां' भर ली!

मैंने बड़े संकोच के साथ कहा—थोड़ी देर पहले आपने ही तो मुझे यहां खाने और रहने के लिए कहा था?

भरत दा की पत्नी अचानक झल्ला उठी—आप कहना चाहते हैं कि आप कुछ समझते ही नही? लेकिन मैं भी आप लोगों को यह बता देना चाहती हूं कि इनसे आप लोगों को कुछ नही मिलने का। बहुत दिनो से मैं इन्हें आप लोगो से बचाती फिर रही हूं। इनमे जो कुछ गुण था—उसे मैं बर्बाद करके ही छोड़ूंगी।

—इसका मतलब?

—मतलब क्या है, यह आप अच्छी तरह जानते होंगे। आप लोग सोचते होंगे—गृहस्थी की चक्की मे पिसकर जब मैं मर जाऊंगी तब जिसकी चीज है, आप इन्हें उसीके हाथ मे सौंप दीजिएगा। जीते-जी यह मैं हर्गिज नहीं होने दूंगी।

मैंने कहा—यह सब आप क्या कह रही हैं?

वह बोली—मैं ठीक ही कह रही हूं। मैं किसीसे डरती नही। मुझे किस बात का है? गरीब की लड़की हूं, क्या इसीलिए मैं कुछ कम …मती हूं? कम जानती हूं?

फिर थोड़ी देर चुप रहकर बोली—आप यहां से चले जाइए। मैं …के पैर पकड़ती हूं। हम लोगों को और मत सताइए। जाइए!

—मैं चला जाऊं? अचकचाकर मैं पूछ बैठा।

—हां। आपको इसी क्षण जाना पड़ेगा। एक रात खाना नहीं खाने पर आप मर नहीं जाएंगे। स्टेशन जाकर आज ही रात की गाड़ी पकड़कर चले जाइए। इनके पिताजी आए थे, उन्हें भी मैंने घर से वाहर निकाल दिया। और क्यों नहीं निकालूंगी ? शादी की है, क्या इसीलिए भगवान के आगे कोई महापाप किया है ?

मैंने कहा—पाप है या नहीं, मैंने तो ऐसा कुछ कहा नहीं। आप क्यों यह सब वातें उठा रही हैं ?

मुझे लगा, वह रोने लगी थी।

वह फिर वोली—अपराध मैंने किया है ? पाप की वात उठाकर अपराध मैंने किया है ? अगर अपराध किया है तो उसके लिए भी मैं किसीके आगे जवावदेह नहीं हूं। मुझे किसी वात के लिए मजबूर मत कीजिए। आप यहां से चले जाइए। उनके परिचित किसी आदमी का चेहरा तक मैं नहीं देखना चाहती। मैं नहीं चाहती कि मेरी ससुराल की तरफ का कोई भी आदमी यहां आए, सास-ससुर तो मर गए, फिर आप लोग क्यों जलन पैदा करने के लिए आ जाते हैं ?

मैंने कहा अटल दा के मां-वाप तो वेटे के शोक में ही मर गए।

वह वोलीं—अच्छा हो हुआ ! वला टली !

—कहां गई ! हाथ-पैर धोने का पानी-वानी दिया क्या ? अटल दा की आवाज सुनाई पड़ी।

मैंने कहा अटल दा ने शायद हमारी वातचीत सुन ली है ?

—उन्हें मैं समझा दूंगी। आप तो जाइए ! जाइए यहां से ! इतना कहकर उसने मुझे मानो धक्का देकर ही निकाल दिया।

मैंने जाते-जाते कहा—अटल दा गुस्सा होंगे, भाभी।

—उनके लिए आपको सोचने की जरूरत नहीं। उनके लिए मैं जो हूं। आप जाइए !

अव उसने मुंह पर धम्म से दरवाजा ही वन्द कर दिया। और घाटशिला की उस अंधेरी रात में मैं हतप्रभ-सा थोड़ी देर अटल दा के घर के वाहर ही खड़ा रहा। उसके वाद उस रात कव गाड़ी आई, कव स्टेशन छोड़ गई और मैं किस तरह कलकत्ता पहुंचा—मुझे कुछ भी याद नहीं।

बार-बार मन में एक ही बात उठती कि जिस तरह अटल दा को मैं इत
प्यार और इतनी श्रद्धा करता था, वह सब कहां खो गई ? क्यों हमें अ
दा को इस तरह खोना पड़ा ?

आज याद आता है कि कलकत्ता लौटकर बहुत बार सोचा कि य
बात दूसरों को बता दूं; पर बताऊं भी तो किसे ? जिसे जानता था
प्यार करता था, वह तो था नहीं। एक तरह से मर गया था।

बाद में मैंने सुना था कि शादी की उस रात के बाद से ही अटल
की नई पत्नी ने अटल दा से कोई रिश्ता नहीं रखा था।

अटल दा के धनी ससुर ने भी अटल दा को त्याग दिया था। और
उसके बाद जीवन की चढ़ाई-उतराई में कौन कहां छिटक गया—मैं किसी
की खबर नहीं ले पाया। फुर्सत भी नहीं थी।

ऐसा तो होता ही है। कितने घनिष्ठ यार, दोस्त, रिश्ते के लोग
जीवन में छिटक जाते हैं, जिनसे फिर कभी भेंट ही नहीं होती। दूसरी
तरफ कितने अनजाने-पराये अपने बन जाते हैं। इसलिए अटल दा की
बात, उनके मां-बाबूजी, यहां तक कि उनकी विवाहिता पत्नी की बात भी
मुझे याद नहीं रही।

बढ़ामहल्ले को छोड़कर कितने मोहल्ले और परिवेश बदलता हुआ
कैसे इस नये मोहल्ले में आ पहुंचा, यह भी तो मैंने पहले से सोच-
समझकर, जान-बूझकर नहीं किया था।

९

आज इतने दिनों के बाद दरख्वास्त में पता देखकर मैं चौंक गया
भुवन बाबू बोले—अगर आपको पसन्द है और अगर आप ठीक
हैं, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।
र। जब भार मुझी पर था तब सोचा, एक बार इन्दुलेखा देवी को
वा लूं। स्कूल के चपरासी के हाथ मैंने एक चिट्ठी भेज दी।
हरवा अगर किसी दिन स्कूल में आ सकती हैं तो

कुछ जानना है— जरूरी है।

सच में मुझे जानने की बड़ी इच्छा हुई कि जिन लोगों के पास इतना पैसा था, पैसे वाले बाप की इकलौती बेटी को नौकरी की क्या जरूरत पड़ गई ? मैंने तो उसी समय सुना था कि बाप का लोहे का कारोबार है। बाप के मरने के बाद क्या वे सारे पैसे बर्बाद हो गए थे ? यह भी सुना था कि पति को छोड़ने के बाद अटल दा की पत्नी पढ़ाई-लिखाई में व्यस्त हो गई थी। मैट्रिक पास तो थी ही, कालेज में दाखिला ले लिया था। पर बी० ए० पास कर गई थी, यह मैं नहीं जानता था।

उसी दिन शाम को मैं श्याम बाजार गया।

वहां मेरा पुराना दोस्त अधीर बोस रहता था। जाते ही मैंने पूछा—तुमने कुछ सुना है, अधीर ! अपने अटल दा का क्या हाल है ?

अधीर कर्मठ आदमी था। चारों तरफ की खबर रखता था। स्वास्थ्य भी अच्छा था। फुर्ती भी थी।

बोला— अटल दा की कौन-सी खबर ?

मैंने कहा—अटल दा की दूसरी पत्नी आई थी। हमारे मोहल्ले के स्कूल में नौकरी के लिए। क्यों, कुछ बता सकते हो ?

यह सुनकर अधीर चौंका तक नहीं। बोला—क्यों, तुमने कुछ नहीं सुना ?

मैंने कहा—वे लोग सम्पन्न हैं। मैं तो यही जानता था। बहुत बड़ा लोहे का कारोबार था, आलीशान हवेली। बाप के मरने के बाद सब कुछ बर्बाद हो गया क्या ?

अधीर बोला—सब कुछ तो अटल दा ने ही बर्बाद किया।

— क्या बक रहे हो ? मैं मानो आकाश से गिरा। अटल दा के लिए मेरे मन में एक अजीब-सा आकर्षण था। उनके चेहरे के कारण या उनकी आंखों के लिए, यह मैं नहीं कह सकता।

अधीर की बात सुनकर मैं सच में हैरान रह गया। मैंने कहा—मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम ?

न मालूम अधीर को इतनी खबर कहां से मिल गई। अधीर बोला—घाटशिला के स्कूल में एक बार अपनी एक टेक्स्ट-बुक लगवाने के लिए गया था। वहीं मुझे यह खबर मिली थी।

अधीर की किताबों की दुकान थी। विभिन्न तरह की पाठ्य-पुस्तकें छापकर स्कूलों में चलाने की कोशिश करता था। इस धन्धे में उसे गांवों और शहरों में काफी घूमना पड़ता था। पहली बार जब वह घाटशिला गया, तब उसे मालूम नहीं था कि अटल दा घाटशिला के स्कूल में हैं। पर बाद में बातों ही बातों में पता लग गया। उसके बाद से जितनी बार अधीर घाटशिला गया, कुछ न कुछ खबर जरूर लाया।

अटल दा कभी हमारे स्कूल के आदर्श लड़के थे। उस अटल दा की खबर पाने के लिए किसके मन में उत्सुकता नहीं होती!

अधीर ने जो खबर सुनाई थी, वह गोपनीय थी, इसलिए इतने दिनों के बाद उस बात को लेकर कहानी लिख रहा हूं। उस समय पता चलने पर बहुत-से लोग दुखी होते, पर आज दुख मनाने के लिए कोई नहीं है। अब तो उस नाटक के अन्तिम अंक के अन्तिम दृश्य पर भी पर्दा पड़ गया है—इसीलिए तो मैं लिख पा रहा हूं।

१०

खैर। हां, तो मैं कह रहा था—हम लोगों की तरह शायद इन्दुलेखा देवी भी अटल दा को ढूंढ रही थीं। ढूंढ-ढूढ़कर वह थक गई थीं। निराश हो चुकी थीं। अन्त में एक दिन वह घाटशिला पहुंच ही गईं।

अन्दर से किसीने कहा था—कौन ?

इन्दुलेखा बोली थी—मैं।

—मैं कौन ? नाम नहीं है ? कहते-कहते जो बाहर निकल आई, उसे इन्दुलेखा तुरन्त पहचान गईं। वह कुन्तीदेवी थी। पर कुन्ती की बात का जवाब देने के पहले ही इन्दुलेखा अन्दर घुस गईं। सीधे अटल दा के सोने के कमरे में पहुंच गईं। अटल दा उस समय चद्दर ओढ़कर कोई

व पढ़ रहे थे। सिर उठाकर पूछा—तुम ?
—हां, मैं !
दोनों में से किसीको कुछ और कहने की ज़रूरत नहीं थी। फिर भी
ल दा ने पूछा—अचानक कैसे आना हुआ ?
—छह महीने हो गए। मेरे पिताजी का देहान्त हो गया है।
—उम्र पूरी हो गई थी। चले गए। मैं क्या कर सकता हूं, बोलो ?
—हां, तुम क्या कर सकते हो ! तुम्हारे साथ मेरा क्या रिश्ता !
—यही बताने के लिए इतनी दूर आई हो ?
—इतनी-सी बात के लिए कोई सिरफिरा ही यहां आएगा।
—तो फिर क्यों आई हो ? वही बताओ !
—ज़रूर कहूंगी, नहीं तो तुम जीत जाओगे। क्या सोचा है तुमने ?
मुझे हराकर तमाम दुनिया से वाहवाही लूटोगे ?
—मेरी वाहवाही की बात रहने दो।
—उस समय मैं छोटी थी, इसलिए कुछ समझी नहीं थी। पर अब
तो बड़ी हो गई हूं। तुम्हारा मतलब मैं खूब समझती हूं।
कमरे की हवा तक गम्भीर हो उठी थी। और बेजान सारी चीजें
—अलगनी, बिस्तर, बक्से मानो संजीव हो उठी हों। बाहर की खिड़की
से एक गौरैया आ टपकी, पर इस भयंकर स्तब्धता को बर्दाश्त न कर
फिर उड़ गई।
इस मौन को तोड़कर इन्दुलेखा बोली—तुम्हारे साथ मेरा रिश्ता
सिर्फ सम्पत्ति का लेन-देन है। इसके अलावा और रिश्ता हो ही क्या
सकता है, कहो ?
—इतने दिनों के बाद यह बात तुम्हारी समझ में आई ?
—निर्लज्ज की तरह बात स्वीकार कर रहे हो न ?
—तुमसे शादी करने गया था, यही तो चरम निर्लज्जता
यह किसे नहीं मालूम, कहो ! आज स्वीकार करने पर मेरा बेहयापन
कम तो नहीं होगा।
—लेकिन इस हालत में गुज़ारा कर तुम उसी निर्लज्ज
छुपाना चाह रहे हो। क्या मैं कुछ नहीं समझती ?

—मैं चाहे कितनी भी तंगी में क्यों न रहूं, फिर भी तुम्हारे आगे तो हाथ फैलाने नहीं गया।

—भीख मांगने की स्थिति में हो, यह तो देख ही रही हूं। पर भीख क्यों नहीं मांगी, यह भी मुझे मालूम है।

—क्या मालूम है, कहो ?

—वही बताने आई हूं। और इतने दिनों तक क्यों नहीं आई थी, यह भी बताऊंगी। जिस सम्पत्ति के लोभ में तुमने मुझसे शादी का ढोंग रचाया था, उसे ठुकराकर तुम समझते हो, तुम जीत जाओगे !

—इसका मतलब ? अटल दा ने पूछा।

—बड़े अहंकारी हो न ?

—क्या कहना चाहती हो, साफ-साफ कहो।

—साफ-साफ ही कह रही हूं। तुम्हें मैंने बहुत-सी चिट्ठियां लिखीं, पर तुमने एक का भी जवाब नहीं दिया। क्या सोचा है तुमने ? बिना खाए-पीए रोग में, शोक में, भूखे-नंगे मर जाओगे और मैं तुम्हारे शोक में रोऊं, यही न ?

—तुम्हारी एक भी चिट्ठी मुझे आज तक मिली हो, मुझे याद नहीं आता। खैर, छोड़ो उस बात को। क्या लिखा था तुमने उन चिट्ठियों में ?

—सुनिए !

अचानक पीछे से औरत की आवाज सुनकर इन्दुलेखा ने पीछे मुड़कर देखा।

चौखट पर कुन्ती खड़ी थी।

इन्दुलेखा बोली—क्या है ?

कुन्ती बोली—देख रही हैं, साल-भर से वह बिस्तर पर पड़े हैं और आप उन्हें खरी-खोटी सुना रही हैं ?

—क्यों ? यदि साल-भर से बीमार हैं, तो डाक्टर क्यों नहीं बुलाया गया ? अच्छा डाक्टर बुलाने के लिए यदि तुम लोगों के पास पैसे नहीं थे तो तुमने मुझसे मांगे क्यों नहीं ?

उसके बाद वह अटल दा की तरफ देखकर बोली—पैसों के लिए

…ी तो तुम्हारे बाप ने मेरे साथ तुम्हारी शादी की थी। उन पैसों को मांगने में तुम्हें फिर शर्म क्यों आई ?

—चोप ! लगा मानो कमरे में बिजली गिरी हो। अटल दा के गले में इतनी ताकत है, कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था।

पर, इन्दुलेखा अगर इतनी आसानी से हार मान जाती तो फिर वह इन्दुलेखा काहे की थी। उसने भी ऊंची आवाज में कहा—तुम किसे चुप रहने के लिए कह रहे हो ?

—तुम्हें कह रहा हूं।

—मैं चुप रहने के लिए यहां नहीं आई हूं। चुप रहने की आज मेरी बारी नहीं है। आज मैं अपना अधिकार जताने आई हूं। उस अधिकार की बात मैं चिल्ला-चिल्लाकर बताने के लिए आई हूं।

—अच्छा, तो बताओ कि तुम्हारा अधिकार क्या है। और बता-कर चली जाओ।

—सिर्फ अधिकार बताऊंगी, ऐसा नहीं, उसकी व्यवस्था भी करूंगी।

—बोलो, सुनता हूं तुम्हारे अधिकार की बात !

—तुम दोनों मिलकर क्या इसी तरह मेरा जीवन बर्बाद कर डालोगे ? मैं क्या कोई नहीं हूं ? मैं तुम लोगों की कोई नहीं लगती ? अग्नि को साक्षी मानकर क्या तुमने मुझसे विवाह नहीं किया था ?

—मैं तुम्हें बता चुका हूं, वह मेरी लज्जा थी।

—वह तुम्हारी लज्जा हो सकती है, पर इसमें मेरा क्या कसूर ? तुम्हारी लज्जा का परिणाम मैं क्यों भोगूं। मुझे आज तुमसे इसका जवाब चाहिए।

थोड़ी देर तक अटल दा कुछ नहीं बोल सके। फिर कहा—तुम किस कीमत पर मुझे मुक्ति दे सकती हो ? मैं वह कीमत जरूर चुकाऊंगा।

इन्दुलेखा गरज उठी। बोली—निर्लज्ज, कायर कहीं के ! किस मुंह से आज तुम मुक्ति की बात कर रहे हो ? तुम्हें अगर मुक्ति मिल गई, तो दुनिया की हर चीज झूठी है। भगवान झूठा है। चन्द्र और सूर्य झूठे हैं, सारी दुनिया झूठी है।

—तुम क्या चाहती हो, बोलो ? मेरी तबियत बहुत खराब है।

—मैं तुम्हारी चिकित्सा करवाना चाहती [illegible] । तुम्हें स्वस्थ देखना चाहती हूं ।

—चिकित्सा ?

कुन्तीदेवी हैरान रह गई । कमरे में यदि बिजली गिरती, फिर भी वह शायद इतनी हैरान नहीं होती ।

तेज-तर्रार लड़की कुन्ती, आज मुरझा-सी गई । उसके ओंठों से आवाज नहीं निकली ।

इन्दुलेखा बोली— तुम पूछ सकते हो कि मैं क्यों तुम्हारी चिकित्सा करवाना चाहती हूं ? जिसने मेरा इतना बड़ा सर्वनाश किया है, उसका स्वास्थ्य लौटा देने में मुझे क्या फायदा ? पर लाभ मुझे है, इसीलिए मैं तुम्हें ठीक देखना चाहती हू । तुम्हें ठीक न कर सकने पर मुझे मुक्ति नहीं मिलने की ।

—इसका मतलब ?

—इसका मतलब अगर तुम समझते हो तो मेरा इतना दुर्भाग्य किस बात का ? इसका अर्थ तुम्हें समझने की जरूरत नहीं ।

अचानक अटल दा पर नजर पड़ते ही इन्दुलेखा ने देखा, इतनी उत्तेजना के बाद अटल दा बड़े कमजोर दिख रहे थे । अब तक वह बैठे थे, पर अब लेट गए और उनके मुह से खून बह चला ।

इन्दुलेखा ने कुन्ती से कहा—खड़ी-खड़ी देख क्या रही है ? किसी-डाक्टर को बुलाइए ।

कुन्ती बोली—यह उनकी कोई नई बीमारी नहीं है ।

—नई नहीं है तो भी खड़े-खड़े देखने से काम चलेगा ? कोई पीकदान तो कम से कम लाकर दीजिए । इस तरह ने तो यह आदमी मर जाएगा ।

पर, कुन्ती उसी तरह चुपचाप खड़ी रही । बोली – आपके यहां रहने पर मैं उन्हें बचा नहीं पाऊंगी । आप चली जाइए ।

—मैं चली जाने के लिए यहां नहीं आई हू ।

—अगर आप उनका भला चाहती हैं, तो आपका यहां रहना ठीक नहीं ।

—मैं इन्हें इस हालत में छोड़कर नहीं जा सकती । तुम्हारे हजार बार कहने पर भी नहीं ।

—तो फिर अपनी आंखों के सामने आप उनकी मृत्यु देखना पसन्द करेंगी ?

—मैं क्या चाहती हूं, क्या नहीं, यह सोचने की तुम्हें जरूरत नहीं। उनका अच्छा-बुरा मेरा भी अच्छा-बुरा हो सकता है। तुम नहीं मदद करोगी, तो मुझे ही देखना पड़ेगा। इतना कहकर इन्दुलेखा अटल दा का सिर गोद में लेकर बैठ गई और अपने आंचल से उनका मुंह पोंछकर पखा झलने लगी। उस दिन की इन्दुलेखा एक आश्चर्य की मूर्ति थी।

उसके चेहरे की तरफ देखकर कुन्ती निर्वाक रह गई। उस दिन से रोगी, सौत और उस गृहस्थी का सारा भार इन्दुलेखा देवी पर ही आ पड़ा।

११

मैंने पूछा—उसके बाद ?

अधीर बोस ने कहानी पूरी की।

कहा—अन्त में हमारे हीरो अटल दा अपनी दूसरी पत्नी के पैसों से ही गुजारा करने लगे। डाक्टर, दवाई, मकान का किराया सब उनकी दूसरी पत्नी ही जुटाती थी।

मैंने पूछा—उसके बाद ?

अधीर बोला—उसके बाद से अटल दा कभी वालटेयर, तो कभी पुरी रहने लगे। इन्दुलेखा देवी के बाप के मर जाने पर लोहे का कारोबार बन्द हो चुका था। बैंक में जो रुपये थे, उसीसे काम चल रहा था।

अपने अटल दा का यह परिणाम होगा, ऐसा सोचा भी नहीं था, भाई। अब तो पत्नी के पैसों से ही अटल दा की गृहस्थी चलती है।

मैंने मन ही मन सोचा—हो सकता है, अधीर जो कुछ कह रहा है, ठीक ही हो। अटल दा के पीछे सारा पैसा खत्म हो गया हो, इसीलिए शायद नौकरी की जरूरत पड़ी हो।

अधीर ने मुझसे पूछा—तुमने उसे नौकरी दी ?

मैंने कहा—कल आने के लिए कहा तो है। देखें, क्या जवाब देती है। सोचा है, पूछूं कि नौकरी की उसे जरूरत क्या है ?

सोचा था, मेरी चिट्ठी पाकर दूसरे ही दिन इन्दुलेखा देवी आएगी। भुवन बाबू से मैंने कह रखा था—यह महिला मेरी परिचित है। इन्हें ही रखिएगा। भुवन बाबू मान भी गए थे। पर जिस समय आने की बात थी, वह नहीं आई। दस बज गए, ग्यारह बज गए, बारह भी बज गए, फिर घड़ी की तरफ देखा तो डेढ़ बज चुके थे। खबर चपरासी के मारफत ठीक समय पर ही भेजी गई थी। पर दो बजे तक भी इन्दुलेखा देवी की कोई खबर नहीं मिली। शाम के करीब तीन बजे इन्दुलेखा देवी आईं। बड़ी उदास, थकी-थकी-सी लग रही थी। लगा, सारी रात सो नहीं सकी थी। उनकी तरफ देखकर मैं चकित रह गया।

पूछा—आपकी तबीयत खराब है ?

इन्दुलेखा बोली—नहीं।

मैंने कहा—इस पोस्ट के लिए हम लोगों ने आपही को चुना है। समय पर आपको नियुक्ति-पत्र मिल जाएगा।

इन्दुलेखा देवी के चेहरे पर कृतज्ञता का भाव स्पष्ट हो उठा। मुझे नमस्ते कर वह चली गई। चलते समय बोल गई—आपने मेरा जो उपकार किया, उसे मैं व्यक्त नहीं कर सकती।

मुझ पर तो सिर्फ शिक्षिका के निर्वाचन का भार था, वह हो गया। अब मैं फ्री था। स्कूल से मेरा कोई व्यक्तिगत सम्पर्क तो था नहीं। इसलिए मैं अपने और कामों में उलझ गया।

एक दिन स्कूल सेक्रेटरी भुवन बाबू मुझसे मिलने आए। मैंने पूछा —मेरा चुनाव कैसा रहा ? इन्दुलेखा देवी कैसी निकलीं ?

—बहुत ही अच्छी हैं। इतनी अच्छी टीचर हमारे स्कूल में दूसरी कोई नहीं।

—वह कैसे ? मैंने कुतूहलवश पूछा।

भद्र महिला समय की बड़ी पाबन्द है। एक दिन की भी उसने छुट्टी नहीं ली।

—पर, मैंने एक रिस्क लिया था !

—कैसा रिस्क ?

—इन्दुलेखा देवी अपने पति को छोड़ आई हैं, इसलिए मुझे थोड़ा डर था।

—किस बात का डर ?

—हो सकता है, आपके स्कूल की लड़कियों के चरित्र पर इसका कुछ प्रभाव पड़े।

भुवन बाबू बोले— नहीं जी। मामला ठीक इसके विपरीत है। ऐसे आदर्श चरित्र की महिला-टीचर मैंने तो पहले देखी ही नहीं।

मैं थोड़ा हैरान हुआ। स्कूल में इतनी सारी शिक्षिकाओं के रहते हुए, इन्दुलेखा देवी भुवन बाबू को इतनी आदर्श कैसे लगने लगीं। मेरी समझ में कुछ नहीं आया।

मैंने पूछ ही लिया—आपको वह क्यों इतनी आदर्श लगती हैं, बता सकते हैं ?

—उसका पहनावा बड़ा सादा है। चाय वगैरह का बिलकुल नशा नहीं। छात्राओं को बड़े यत्न से पढ़ाती है। हमारी हेडमिस्ट्रेस भी इन्दुलेखा देवी पर खुश हैं। छात्राएं भी उसे खूब मानती हैं।

—चलिए, मेरा निर्वाचन अच्छा रहा। मुझे तो इसलिए खुशी है।

थोड़े ही दिनों में इन्दुलेखा देवी का सुनाम चारों तरफ फैल गया। सभी लड़कियां इन्दुलेखा देवी के पास ही पढ़ना चाहती थीं। वह अपने घर पर भी कई लड़कियों को पढ़ाने लगीं। सुबह-शाम लड़कियों को पढ़ातीं, दिन में स्कूल जातीं। भुवन बाबू ने उनका वेतन भी बढ़ा दिया।

एक दिन सड़क पर इन्दुलेखा देवी के साथ मेरी भेंट हो गई। स्कूल जा रही थीं। सिर पर आंचल था। किसी तरफ बिना देखे, सिर झुकाए चली जा रही थीं। मैंने एक बार सोचा, बुलाकर बात करूं। फिर सोचा,

नहीं, यह ठीक नहीं रहेगा, उचित भी नहीं। किसी अनात्मीय महिला के साथ सड़क पर खड़े होकर बात करना असभ्यता होगी। वह एक साधारण-सी साड़ी और मामूली-सी चप्पल पहने थी। हाथ में एक छोटा-सा छाता भी था।

मेरी बड़ी इच्छा थी कि पूछूं—अटल दा का क्या समाचार है? अटल दा कैसे हैं? पर हो सकता है, मेरा इस तरह से पूछना शायद इन्दुलेखा देवी सहज भाव से न लें। यही सोचकर मैं भी उसे अनदेखी कर गया।

बाद में भुवन बाबू से ही मैंने सारी बातें सुनीं। उन्होंने ही एक दिन कहा—पूरा काण्ड है। सुना है आपने कुछ?

मैंने पूछा—कौन-सा काण्ड?

—यही आपकी इन्दुलेखा देवी का काण्ड?

—नहीं तो। मैंने तो कुछ नहीं सुना?

—देवी हैं साहब, देवी। इन्दुलेखा देवी मानवी नहीं, देवी है।

फिर भुवन बाबू इतिहास बताने बैठ गए। किन कठिन परिस्थितियों में इन्दुलेखा देवी अपना जीवन बिता रही हैं, किस तरह वे पति की अवहेलना और उसका अत्याचार और तिरस्कार सह रही हैं। यह बिना रुके सारी कहानी कह गए। फिर बोले - उस रोगी पति के पीछे उसने सारी पैतृक सम्पत्ति फूंक दी है। जिस पति ने शादी की रात ही उसे त्याग दिया था, उसी पति के लिए उसने अपने जीवन का सारा सुख, विलास, अर्थ, सामर्थ्य, स्वास्थ्य सब कुछ नष्ट कर दिया है। उसी पति को उसने कितनी ही बार वायु-परिवर्तन के लिए महंगी जगहों पर भेजा है। बड़े-बड़े डाक्टरों को बुलाया है। महंगी दवाइयां लाकर दी हैं।

भुवन बाबू मुझे इन्दुलेखा देवी का पूरा इतिहास बता गए। फिर बोले—वास्तव में आज के समाज में ऐसी पति-भक्ति कहीं देखने को भी नहीं मिलती साहब। यह तो सच में देवी है।

मैंने कहा—मैं ये सारी बातें जानता हूं।

—आपको सब कुछ मालूम है?

भुवन बाबू हैरान हो गए। फिर पूछा—आप ये बात जानते हैं ?

—जानता हूं, तभी तो मैंने उसका निर्वाचन किया था।

—पिछले पन्द्रह साल से इस तरह पति को बीमारी से बचाकर रखना कोई मामूली बात नहीं है, जनाब! आजकल की कौन पत्नी इतना कर पाएगी! कहिए ?

—सो तो आपका कहना ठीक है।

—मैंने सोचा है कि ऐसी पति-परायणा देवी के लिए एक सम्मान-सभा का आयोजन करना चाहिए। आप क्या कहते हैं ?

—अवश्य कीजिए, मेरी ओर से क्या आपत्ति हो सकती है!

—आपत्ति तो इन्दुलेखा देवी कर रही हैं। कहती हैं, मैंने अपने रुग्ण पति के लिए ही तो त्याग किया है। उसके लिए सम्मान क्यों ?

फिर भुवन बाबू ने मुझसे कहा—अगर आप उन्हें किसी तरह मना कर 'हां' करवा सकें, तो बड़ा अच्छा हो। हमारी तरफ से जरा कोशिश कीजिए न!

मैंने कहा—उनके पति के साथ मेरा परिचय है, यह मैं उन्हें नहीं बताना चाहता।

—फिर आप एक काम कीजिए।

यह कहकर उन्होंने एक प्रस्ताव रखा। बोले—अगर हम लोग उनके रोगी पति की सहायता के लिए कुछ चन्दा इकट्ठा करें, तो कैसा रहेगा ?

यह सुनकर मैं बड़ा खुश हुआ। मैंने कहा—यह तो बड़ा अच्छा रहेगा। मैं इससे बिलकुल सहमत हूं।

—फिर मैं यही प्रस्ताव उनके सामने रख रहा हूं। आपकी क्या राय है ?

अन्त में यही तय हुआ। कुछ ही दिनों में भुवन बाबू की कोशिश से एक हज़ार रुपए चन्दे के इकट्ठे हो गए। सबने कुछ न कुछ दिया ही। मैंने भी पांच रुपये दिए। भुवन बाबू ने भी सौ रुपये दिए थे।

इस बात से मुझे बड़ी खुशी हुई। अटल दा—हमारे बचपन के अटल दा के लिए मैं इससे भी अधिक कुछ कर पाता तो खुश होता।

यह समारोह बड़े सादे ढंग से मनाया गया। इन्दुलेखा देवी घूम

पसन्द नहीं करती थी। पैसा लेकर उन्होंने भुवन बाबू को धन्यवाद दिया।

बोलीं—प्रार्थना कीजिए, मेरे पति जल्दी से जल्दी स्वस्थ हो जाएं।

उसके बाद अचानक एक दिन खबर मिली कि अटल दा कलकत्ता आए हुए हैं। खबर अधीर बोस ने ही दी थी। वह पेन्ड्रा रोड के सैनिटोरियम में थे। इन्दुलेखा देवी ने ही उन्हें कलकत्ता बुलवाया था।

खबर सुनकर मैंने कहा—तब तो अटल दा बिलकुल अच्छे हो गए होंगे।

अधीर बोला—नहीं। अगर अच्छे हो होते तो कलकत्ता आने की जरूरत ही क्या थी?

—उनका पता तुम्हें मालूम है, अधीर?

अधीर ने मुझे अटल दा का पता बताया। उससे पता लेकर मैं बहूबाजार में उनके घर पहुंचा।

कलकत्ता में इतने मकान रहते हुए भी अटल दा इस मुहल्ले में? इस अंधेरी कोठरी को ही किराए पर क्यों लिया, कह नहीं सकता। कोई अच्छा-सा खुली हवा और धूप वाला मकान उन्हें नहीं मिला?

अंधेरे और सीलन भरे कमरे में बहुत दिनों के बाद अटल दा को देखकर मैं पहली बार की ही तरह अवाक् रह गया। जिसने आकर दरवाजा खोला, उसे देखकर मैं समझ गया कि वह उस दिन वाली वही भाभी थी—कुन्तीदेवी। हालांकि उनका चेहरा और भी बदला-सा लगा।

मैंने कहा—शायद आप मुझे पहचान रही हों? वह कुछ बोली नहीं।

मैंने कहा—कई वर्ष पहले आपके पाटलिया के मकान में मैं अटल दा से मिलने गया था। अटल दा और मैं एक ही स्कूल में पढ़ते थे।

—आप क्यों आए हैं? भाभी ने पूछा।

मैंने कहा—सुना है, अटल दा यहां हैं। इसलिए एक बार उन्हें देखने के लिए आया था।

—क्या देखेंगे उनका ?

—क्यों, उनसे भेंट करना मना है क्या ?

—नहीं। मना तो नहीं है, पर उनसे भेंट करने पर शायद वह और अधिक दिन तक जी जाएं।

यह सुनकर पहले तो मैं चौंक उठा। कहने का तात्पर्य समझने में ही मुझ कई क्षण लग गए। उसके बाद मैंने कहा—आपके ऐसा कहने का मतलब ?

—मतलब यही कि उनके लिए जल्दी मर जाना ही बेहतर है।

—क्यों ?

—मरने पर उन्हें शान्ति मिलेगी। और मैं भी यही चाहती हूं।

—मैं चकित रह गया। बोला—आप क्या कह रही हैं, मैं समझ नहीं पा रहा हूं।

—दिन-रात मैं भगवान से प्रार्थना करती हूं, कि वह जल्दी मर जाएं। उनका कष्ट अब और मुझसे नहीं देखा जाता।

—क्या कह रही हैं, भाभी ?

—मैं ठीक ही कह रही हूं। मरना ही उनके लिए शुभ होगा। बहुत ही शुभ !

—पर मैं तो आपकी बात समझ ही नहीं सकता। मैंने तो सुना था, बहुत दिनों से उनके रोग की चिकित्सा चल रही है। उनपर बहुत पैस खर्च किया जा रहा है। यह भी सुना था कि उनकी चिकित्सा के पी किसीने अपनी सारी जायदाद स्वाहा कर दी है। अटल दा को जीवि रखने के लिए दिन-रात परिश्रम करती रहती हैं ?

—आपने गलत सुना है।

—नहीं भाभी। गलत नहीं सुना है। वह हमारे ही मुहल्ले के स्कूल में नौकरी करती है। हम मुहल्ले वालों ने उनके पति की चि के लिए चन्दा इकट्ठा करके एक हजार रुपये भी दिए हैं।

—आप लोगों ने भूल की है। इतनी भयानक धोखेबा निर्दयी, इतनी नीच औरत मैंने इस जीवन में नहीं देखी। साम तो मैं उसका गला घोंट देती।

सुनकर मेरी हैरानी और बढ़ गई। मैंने कहा—आप गुस्से में किसके लिए, क्या कह रही हैं?

वह बोली—आप बिलकुल बेखबर हैं, इसलिए उसकी तरफदारी कर रहे हैं। अगर आपको पता रहता तो आदर जताकर हजार रुपयों का चन्दा इकट्ठा नहीं करते। आप जानते नहीं, कितनी भयंकर ईर्ष्या और नीच औरत है वह?

गुस्से से भाभी काँप रही थी।

मैंने कहा—हम लोग तो उन्हें अच्छी औरत के रूप में ही जानते हैं। अपने पति के लिए उन्होंने क्या-कुछ नहीं गंवाया है?

—आपको कुछ नहीं मालूम। मालूम होता तो आप उसे स्कूल से झाड़ू मारकर भगा देते।

—क्यों?

—तो फिर सुनिए। इतनी नीच औरत है कि पति पर उसे जरा भी दया-ममता नहीं। बिलकुल निर्मम आत्मा है वह। बाहर वाले समझते हैं कि वह पति के लिए सब कुछ न्योछावर कर रही है, पर ऐसी निर्मम औरत सारी दुनिया में कभी भी नहीं जन्मी होगी। मैं उसकी तरफ देखती हूं और हैरान रह जाती हूं। हो सकता है वह बच जाते, पर जिस दिन से उस मुंहजली के हाथ पड़े, उस दिन से मैंने इनके बचने की उम्मीद भी छोड़ दी।

—कैसी अजीब बात है!

—हां, भाई! जिस तरह लोग दवाई गिनाकर अधमरे चूहों को तड़पता देखकर मजा लूटते हैं, वह भी कुछ ऐसा ही है। इन्दुलेखा देवी रुपया-पैसा खर्च कर रही है, चिकित्सा करवा रही है, जरूरत पड़ने पर हवा बदलने के लिए अच्छी जगहों पर भेज भी रही है। छह महीने के लिए वाल्टेयर भेजा था, पुरी में दो साल रखा था। हाल में पेन्ड्रा रोड के सैनिटोरियम में भी तीन साल रखा था।

—सारा खर्च अकेले वही तो रही हैं?

—हां, वह तो दे ही रही है। न मालूम आज तक कितने हजार रुपये उसने खर्च कर दिए हैं। उसका हिसाब मेरे पास नहीं,

जितना भी खर्च हो, पैसों के मामलों में वह कभी नहीं कतराई। हर स्वास्थ्यप्रद जगह हम दोनों को भेज देती है। अच्छे से अच्छे डाक्टर को बुलवाकर इनकी चिकित्सा करवाती है। चिकित्सा में भी कोई कमी नहीं है।

—तो फिर ? खामखा उनके नाम आप इतना दोष मढ़ रही हैं ?

—दोष तो दूंगी ही। इतना करने पर भी यह ठीक क्यों नहीं होते ? इतनी दवाइयां खाने और चिकित्सा होने पर भी इनकी बीमारी क्यों ठीक नही होती ?

—बीमारी का ठीक होना-न होना तो आदमी के वस में नहीं है न !

भाभी झल्ला उठीं। बोलीं—यही बात वह सबको समझाती फिर रही है। पर असल बात क्या है, आप जानते हैं ?

—आप ही कहिए। मेरी समझ से असल बात तो यही है कि वह पति को स्वस्थ और जीवित रखना चाहती हैं। और क्या हो सकती है ?

—नहीं, असल बात यह नहीं है।

—तो क्या पति की मृत्यु हो जाए, यही उनकी मनोकामना है ?

—नहीं। यह भी नहीं।

—तो फिर ?

—उसका असली उद्देश्य है आदमी को जीने और मरने के बीच की स्थिति में रखना। यह सारी जिन्दगी इसी तरह अपाहिज और नाकाम होकर रहें, यही उसकी अभिलाषा है।

—क्या कह रही हैं ?

—हां ! इसीलिए चिकित्सा के कारण जैसे ही वह ठीक होने लगते हैं, वह चिकित्सा बन्द करवा देती है। खर्च से हाथ समेट लेती है। उस बार वाल्टेयर में इनकी सेहत काफी अच्छी हो गई थी, जैसे ही उसे यह खबर मिली, उसने कहला भेजा—बस, वाल्टेयर रहने की अब कोई जरूरत नहीं। चले आओ। यह कुछ दिन और वहां रहते तो बिलकुल अच्छे हो जाते। पर यही तो वह सह नहीं सकती। एक बार की बात है। एक दवा

से इन्हें काफी फायदा पहुंचा था। दवाई कीमती थी। जैसे ही उसे लगा, इस दवाई से यह आदमी सचमुच ही जी जाएगा, उसने रुपये भेजना बन्द कर दिया।

थोड़ी देर रुककर फिर बोलीं—इसी बार पेण्ड्रा रोड के सेनिटोरियम में पिछले तीन मास से इन्हें रखा था। इनका वजन भी बढ़ गया था। भूख भी लगती थी। जैसे ही यह खबर मिली, उसने तुरन्त चिट्ठी लिख दी—कलकत्ता चले आओ। और पैसा भेजना मेरे लिए सम्भव नहीं।

यह सब सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो गया था। बोलूं तो मुंह में आवाज नहीं। काफी देर बाद मैंने पूछा—ऐसा करने का उद्देश्य क्या है?

—तमाशा देखने के अलावा और क्या उद्देश्य हो सकता है? दवा खाकर चूहा छटपटाता है और लोग तमाशा देखते हैं। यह भी बहुत हद तक वैसा ही है। छोड़ेगी भी नहीं, मरने भी नहीं देगी। यह एक अजीब निष्ठुर आनन्द है। इस औरत का तो मैं खून करूं, तभी मेरे मन की जलन मिटेगी।

इसके बाद मेरे कहने लायक कुछ भी नहीं रहा। कुछ कहा भी नहीं। लौटते समय केवल पूछा—अब कैसे हैं अटल दा?

भाभी थोड़ी देर कुछ नहीं बोली। फिर बोली—इतनी बातें सुनने के बाद भी आप यह पूछ रहे हैं?

खैर! अटल दा उस समय सो रहे थे। उस दिन उन्हें दूर से ही देखकर चला आया था। अटल दा से बात करने का मौका मुझे नहीं मिला था।

१२

मेरे जीवन का यह एक अजीब अनुभव था। इस तरह की कोई घटना किसी कहानी या उपन्यास में भी मैंने नहीं पढ़ी। जीवन में इस तरह की घटना घट सकती है, इसका मुझे अन्दाज ही नहीं था। कई दिन तक मन ही मन बड़ा बेचैन रहा। ऐसा क्यों होता है? कैसे कोई दूसरे की गृहस्थी

उजाड़ सकता है? क्या इन्दुलेखा देवी को इससे शान्ति मिल रही है। मैंने भी कई मोटी-मोटी किताबें लिखी हैं। सोचता था, मनुष्य-चरित्र मैं समझता हूं। आदमी की नस-नस पहचानता हूं। इसके अलावा दूसरों के भी लिखे कई उपन्यास मैंने पढ़े हैं। शेक्सपियर से लेकर टालस्टाय, बालजाक, मोपासां, गोर्की सब मैंने पढ़े हैं। बालजाक के बारे में सुना है : दि ग्रेटेस्ट क्रियेटर आफ ह्यूमन कैरेक्टर्स नेक्स्ट टू गॉड। (भगवान के बाद मनुष्य पात्रों का सबसे बड़ा स्रष्टा वही था।)

पर, उसकी किताब में भी ऐसा चरित्र देखने को नहीं मिला। तो क्या कुन्तीदेवी ने झूठ कहा था? सौत पर अपना गुस्सा उतार रही थी! बहुत माथापच्ची करने के बाद भी मैं किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सका।

उस दिन अचानक अघोर घोस मेरे यहां आया। वैसे किसीके घर जाने की फुर्सत अघोर घोस को मिलती नहीं है। मेरे नये घर का पता भी उसे नहीं मालूम था, पर रविवार छुट्टी का दिन था—शायद यही सोच-कर निकल पड़ा था।

आते ही बोला—मैं आ गया रे!

मैंने पूछा—उस मामले का कुछ पता लगाया?

—किस मामले का?

—अरे भाई, वही! अटल दा के मामले को लेकर मैं बड़े सोच में पड़ा हूं।

मैं वही बताने तो तेरे यहां आया हूं।

उसके बाद अघोर ने जो कुछ कहा, सुनकर मैं दंग रह गया। सच में मनुष्य की इस दुनिया में कितनी विचित्र घटनाएं घटती हैं! मनुष्य का मन कितनी विचित्र राहों में भटकता रहता है, उसका हिसाब विधाता भी नहीं लगा सकते। इस धरती पर जितने तरह के लोग मिलते हैं, उतने ही तरह के चरित्र। किसी उपन्यास-लेखक की क्या क्षमता कि वह सबके मन को जान सके—सबके मन का पता लगा सके। अगर ऐसा ही होता, तो लिखने का मसाला भी कब का खत्म हो जाता। हमेशा-हमेशा के लिए

उपन्यास-लेखन बन्द हो जाता। पन्नों पर अगर मनुष्य मन का विचार किया जा सकता तो शायद आदमी, आदमी नहीं रह जाता—मशीन बन जाता।

१३

बहुत दिन पहले की बात है। इस उपन्यास के शुरू-शुरू की घटना थी यह। उन दिनों श्टन दा हमारे मुहल्ले के सरताज थे। पढ़ने में फर्स्ट आते थे। चिनपूत आदर्श थे। हर मुहल्ले में बच्चे चरित्र-गठन के लिए सभा आयोजित किया करते थे। बच्चों के मन में स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव डाला जाता था। जिस तरह आज सबकी जबान पर राजकपूर, दिलीप कुमार, नर्गिस के नाम सुनाई पड़ते हैं—उसी तरह उस समय चरित्र-गठन के लिए विवेकानन्द की लिखी ब्रह्मचर्य की किताब पढ़ने को दी जाती थी। बंकिमचन्द्र की किताब 'आनन्द मठ' एक क्लब से लेकर दूसरे क्लब के लड़के पढ़ते। यह मैं उस अग्नि-युग की बात बता रहा हूं, जब हर मुहल्ले में टेगार्ट साहब घूमते थे। टेगार्ट साहब उस समय कलकत्ता में पुलिस-कमिश्नर थे। सारे शहर में जासूसों का जाल बिछा था। वह खुद हर मुहल्ले में घूम-घूमकर लड़के, बच्चों से दोस्ती करते। टेगार्ट साहब मलमल का एक कुर्ता और लाल की धोती पहनते थे। पैरों में पम्प-शू डालते थे। कहां कौन ब्रिटिश सरकार के खिलाफ कुछ बोल रहा है, अंग्रेजों के विरुद्ध कौन लोगों को भड़का रहा है, कहां लड़के लाठी और तलवार चलाना सीख रहे हैं, घूम घूमकर यही सब देखना-जानना टेगार्ट साहब का काम था। और सचमुच ही अचानक किसी दिन पुलिस की टुकड़ी आती और मुहल्ले के गिने-चुने घरों पर हमला बोल देती।

आज के लड़कों को यह जानना जरूरी है कि हमें स्वतन्त्रता बिना कारण नहीं मिली। करोड़ों लोगों की कोशिश और आत्म-त्याग के जरिये यह स्वतन्त्रता हमें प्राप्त हुई है। आज निश्चिन्त होकर हम जो जी में आता है, करते हैं, जहां सूझो हो, जाते हैं; पर उन दिनों लाट साहब के इर्द-गिर्द

घूमने पर भी पुलिस आकर पकड़कर ले जाती थी। चौरंगी पर खुलेआम कोई घूम नहीं सकता था। मार पड़ती थी, पर इसका कोई उपचार भी नहीं था। आम आदमियों के लिए वह एक दुर्दान्त दमन-युग था।

ट्रेन के जिस डिब्बे में अंग्रेज मुसाफिर चढ़ते, वहां भारतीयों को जगह नहीं मिलती। थर्ड क्लास के डिब्बे में भी अगर दो-चार एंग्लो इण्डियन आ बैठते तो भारतीयों के अधिकार छिन जाते। एक भयावह वातावरण में उन दिनों हम लोग रहते थे। उन्नीस सौ पच्चीस-छब्बीस की बात है। कांग्रेस वालों का स्वर भी नरम था। वे आवेदन, निवेदन के सहारे अधिकार प्राप्त करने की कोशिश कर रहे थे। साल में एक बार किसी एक बड़े शहर में मीटिंग होती थी। कुछ प्रस्ताव पास होते थे। भाषण होते थे। पर असली काम मुहल्ले की गुप्त समितियां ही करती थीं। अंग्रेज इन्हीं से डरते थे। बाकी लोग अंग्रेजों के अधीन अच्छी नौकरी करते थे। पुलिस के ब्लैक रजिस्टर से अपना नाम बचा रखा था। अपने नाम पर दाग नहीं लगने दिया था। उन दिनों जो लोग लाठी और तलवार चलना सीखते थे, जिन्होंने क्लब बनाकर, नाइट स्कूल खोलकर लड़के-लड़कियां को बुद्धि-सम्पन्न बनाने के लिए अपना सब कुछ त्याग दिया था, उनमें से बहुतों को हम आज नहीं जानते। हो सकता है, उनमें से आज भी कुछ जीवित हों, पर आज खुशी के दिनों में उन्हें कोई याद नहीं करता। थोड़ी-बहुत पेन्शन उन्हें मिल जाती होगी।

खैर! उन दिनों हमारे मुहल्ले के आदर्शवादी लड़कों में एक थे हमारे अटल दा। जब बाकी लोग अपने स्वार्थ के पीछे दीवाने बने हुए थे, अटल दा हम लोगों को आदमी बनाने के पीछे जुटे हुए थे। वाकई वह अतिमानुषिक परिश्रम करते थे।

आशु बाबू को यह सब पसन्द नहीं था। उनकी इच्छा थी कि उनका लड़का उन्हींकी तरह किसी अच्छे आफिस में काम करे। उनसे भी अच्छी नौकरी करे। बड़ी मोटरगाड़ी में दफ्तर आए-जाए, जिससे दस जने आंखें फाड़कर देखें। आमतौर से हर गृहस्थ बाप जो चाहता है, आशु बाबू भी उससे अधिक की आशा नहीं रखते थे। हो सकता है, उनके मन में एक छोटी-सी आशा रही हो, अपने मकान को दुतल्ला बनाने की।

मध्यम वर्ग की मनोवृत्ति की चरम आकांक्षा वह अपने बेटे के माध्यम से प्राप्त करना चाहते थे। शायद इसीलिए कभी-कभी वह बेटे से कहते—समय बड़ा खराब है। थोड़ी सावधानी से चलना, बेटे।

अटल दा बुद्धिमान पुत्र थे। बाप के सामने बाप की किसी बात का प्रतिवाद उन्होंने कभी नहीं किया। वह कहते—हाँ बाबूजी, समझ-बूझ कर ही चलता हूँ।

आशु बाबू ने कहा था—सुना है, टेगार्ट साहब हुलिया बदलकर मोहल्ले में घूमते हैं।

अटल दा कहते—हाँ, सुना तो हमने भी है।

आशु बाबू कहते—तो फिर इस समय बाहर जरा कम घूमा करो। चारों तरफ जासूस हैं।

सिर्फ आशु बाबू ही क्यों, दूसरे लोग भी अटल दा को सचेत करते रहते, अटल दा की भलाई के लिए उपदेश देते। कहते—अपने बाप के लिए भी कुछ सोचो अटल। बुढ़ापे की आशा तो तुम ही हो न।

ये सारी बातें हम लोगों के कानों में आ पहुँचती थीं। पर हम बड़े-बूढ़ों की बातों पर ध्यान नहीं देते। हम लोगों ने तो सिर्फ यही सीखा था कि देश के लिए प्राण देने में ही गौरव है। हम जानते थे कि अंग्रेज सरकार का उन्मूलन किए बिना देश का हित नहीं हो सकता। हम देखते थे कि हजारों लड़के पढ़-लिखकर बेकार बैठे हैं। उन्हें कहीं नौकरी नहीं मिलती। उस समय हम लोग सी० आर० दास के भाषण सुनते थे। जिस पार्क में भी जोशीला भाषण होता, हम वहीं दौड़ते। मीटिंग के समय पुलिस लाठी लेकर तैनात रहती। किसी-किसी दिन लाठी के बल पर मीटिंग को तितर-बितर कर देती। बहुतों को चोट भी आती। पुलिस जितना कठोर बर्ताव करती, हम लोगों की जिद भी उतनी ही बढ़ती जाती। मन ही मन हम अंग्रेजों के कट्टर दुश्मन बन गए थे। हम अंग्रेजों को भगाना चाहते थे। वह डरने का युग नहीं था। हम तो सिर्फ यही

जानते थे कि चाहे गोली दाग कर हो या बम फेंककर, हमें अंग्रेजों को भगाना ही है। साथ ही साथ अंग्रेज़ी चीजों का बहिष्कार तो था ही। हम लुक-छिपकर स्वामी विवेकानन्द के उपदेश पढ़ते। विवेकानन्द ने लिखा है—'शरीर तन्दुरुस्त रहेगा, तो मन भी तन्दुरुस्त रहेगा।

अटल दा भी हमें यही बातें समझाते। उनकी लिखी किताबें हमें पढ़ने के लिए देते। मन ही मन हम विवेकानन्द बनना चाहते थे। आज की तरह उस समय सिनेमा नहीं था। थियेटर था, पर वह भी श्यामबाजार की तरफ। हमारे मुहल्ले से दूर पड़ता था। वहां जाने का ही मौका नहीं लगता, और फिर उतना पैसा खर्च कर थियेटर देखने का सामर्थ्य मुझमें नहीं था। और सच पूछा जाए तो उसमें कोई दिलचस्पी भी नहीं थी।

ठीक इसी समय अटल दा पर मुहल्ले के बाहर के काम का बोझ आ पड़ा। अपने मुहल्ले के एक छोटे-से क्लब से उन्होंने जिस आदर्श-मय जीवन की शुरुआत की, उसका प्रचार करने के लिए अटल दा ने दूर-दूर के मोहल्लों में क्लब खोले। क्योंकि विवेकानन्द की वाणी को सब तक पहुंचाना जरूरी जो था। तभी तो देश में स्वराज्य आता, मुक्ति मिलती।

हमें यह नहीं मालूम था कि अटल दा कहां, क्या काम कर रहे हैं, किस मोहल्ले में किस नये क्लब का उद्घाटन कर रहे हैं—पर, हम यह जानते थे कि हमारे अपने क्लब की बहुत-सी शाखाएं-प्रशाखाएं खुल गई थीं। अब सभी जगह अटल दा का जाना ज़रूरी था। अटल दा स्वयं देखभाल न करते, तो क्लबों का चलना मुश्किल था।

१४

इसी तरह के एक क्लब में उनके जीवन की वह आंधी आई थी। आंधी माने ऐसा-वैसा कुछ नहीं। पहले तो सचमुच लगा था कि कोई आंधी है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—"जो स्वयं नरक में जाकर

दूसरे जीवों के उद्धार की चेष्टा करता है—वही रामकृष्ण का वंशधर है। जो महानंद पूजा का प्रसाद हर गांव में, हर घर में आकर बांटता है—वही मेरा भाई है, मेरा पुत्र है। यही एक परीक्षा है। जो रामकृष्ण का पुत्र है, वह अपना भला नहीं चाहता। मरते समय भी वह दूसरों का कल्याण चाहता है। जो आराम चाहता है, जो आलसी है, जो अपने लिए दूसरों का बलिदान चाहता है, वह हमारा कोई नहीं। वह हमसे अलग रहे।

अटल दा भी ऐसे ही परोपकारी थे।

अटल दा की भी यही धारणा थी कि खुद फन्दे आकर क्या होगा, यदि बाकी लोग पीछे पड़े रहें। अपनी मुक्ति से क्या फायदा, यदि दूसरे लोग अन्धकार में, कुसंस्कारों में जकड़े रहें। हमें सभी की जरूरत है। मां के आह्वान पर सबको आना पड़ेगा। मां सबकी आत्माहुति मांगती है। अपना सर्वस्व त्यागने पर ही मां जागेंगी। मिट्टी की मां में तभी प्राण-प्रतिष्ठा होगी और वह जाग्रत होगी।

क्लब में आकर अटल दा यही बातें बताते थे। सभी लड़के अवाक् होकर अटल दा की बातें सुनते और देवता की तरह उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते।

लड़के-लड़कियां दोनों ही क्लब में आते थे, पर फ्राक पहनने वाली छोटी लड़कियां ही आतीं। थोड़ी-सी बड़ी हो जातीं तो उनका क्लब आना बन्द हो जाता। घरवाले आने पर रोक लगा देते। तब उनकी शादी की बारी आती, बच्चे होने की बारी आती, गृहस्थी निभाने की बारी आती।

अटल दा पर अविश्वास करना पाप था। अटल दा के चरित्र में धब्बे की बात कोई सोच भी नहीं सकता था। एक दिन कुन्ती आकर उनसे बोली थी—अटल दा, आपको बाबूजी ने बुलाया है।

—क्यों ?

—वह आपको देखना चाहते हैं।

—बाप रे, मुझमें देखने लायक ऐसा क्या है ?

—नहीं, यह बात नहीं। आपकी बात मैंने बाबूजी को बताई थी।

कुन्ती ने अपने बाप को क्या कहा था, क्या पता। पर एक दिन न्ती जिद करके अटल दा को अपने घर ले ही गई। भवानीपुर में ऐसा ी कोई मुहल्ला हो सकता है, यह अटल दा कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

अटल दा को देखकर कुन्ती के बाबूजी बिस्तर से उठ बैठे।

कुन्ती बोली—बाबूजी को बुखार है।

—बुखार है तो आप उठ क्यों रहे हैं ? आप लेटकर ही बातें कीजिए। अटल दा ने कहा।

कुन्ती के बाबूजी हंसकर बोले—बुखार तो आज नहीं आया। पिछले सात साल से बुखार की शिकायत रही है।

—क्यों ? डाक्टर क्या बताते हैं ?

उन भद्र सज्जन ने कहा—डाक्टर की क्षमता के परे है मेरा यह रोग। रोग तो मन का है। फिर बड़े सहज ढंग से वह अपनी कहानी कह गए। सज्जन का नाम था मंगल सरकार।

मंगल बाबू ने कहा—कुन्ती से मैं आपकी बातें सुनता हूं और सोचता रहता हूं। आज काम करने की शक्ति खो बैठा हूं। सोकर केवल स्वप्न देखता रहता हूं। पर बेटे, किसी दिन हममें भी तुम्हारी तरह काम कर की बड़ी लगन थी, शक्ति थी। इसीलिए कुन्ती से कहा था—अप अटल दा को किसी दिन घर पर लाना।

थोड़ी देर रुककर बोले—तुम्हें देखकर मन में उम्मीदें बंध रही तुम जरूर कुछ कर सकोगे।

हमारे अटल दा को कभी इतने वयोवृद्ध आदमी से प्रेरणा प्रोत्साहन नहीं मिला था।

अटल दा ने कहा भी—आपकी तरह मेरे कार्यों को किसीने नीय नहीं समझा है। सभीने निन्दा की है। लोग कहते हैं कि चाकरी कर घर-गृहस्थी के लिए कुछ कमा सकता तो वह इस होता। इससे मां-बाप का उपकार होता। आपने पहली बार किया है।

मंगल बाबू बोले—समर्थन ही क्यों, बेटा, हिम्मत रहती

काम में हाथ भी बटाना। यही तो एक जीवन है। तुम्हारी उम्र में मुझे भी किसीने उत्साह नहीं दिया था, इसलिए मुझे बड़ी क्षति उठानी पड़ी। मैं हार गया हूँ। मुझसे कुछ नहीं हो सका? मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, बेटा, तुम जीओगे—कुछ बनोगे।

इसी तरह कुन्नी के घर अटल दा का आना-जाना शुरू हुआ। चारों तरफ के हजारों कामों के बीच रहकर भी मस्तविलासी बाबू, कलकत्ता युनिवर्सिटी में फर्स्ट आने वाला लड़का अनजाने में किसी आकर्षण से खिंचता चला गया। मंगल बाबू ने कहा था—जब भी तुम्हें समय मिले, आना बेटा। संकोच मत करना।

अटल दा आते, मंगल बाबू के पास बैठते। अपनी आशा-आकांक्षा की बातें उन्हें सुनाते। मंगल बाबू से वह कुछ नहीं छुपाते, छुपा भी नहीं सकते थे। बात करने के लिए एक उपयुक्त आदमी पाकर मंगल बाबू भी बहुत खुश थे। मंगल बाबू का निजी जीवन भी बड़ा विचित्र था। एक दिन उन्होंने कहा—[illegible] में लाट साहब की ट्रेन पर बम गिरा था, यह तो जानते होंगे। उसी काण्ड के कारण बहुत-से लोग पकड़े भी गए थे। पर असली आदमी को पुलिस नहीं पकड़ सकी। जिसने बम चलाया था—और फिर लाट साहब पर फेंका भी था, पुलिस उसका पता आज भी नहीं लगा पाई है। उसके नाम अब भी वारन्ट है।

अटल दा बोले—कौन था वह? असली आदमी कौन था?

मंगल बाबू ने कहा—एक बात और। मेरा असली नाम मंगल सरकार नहीं है। मेरा वास्तविक नाम कुन्नी को भी नहीं मालूम।

अटल दा अवाक् होकर सुन रहे थे—बोले। तो फिर आपका असली नाम क्या है?

—मेरा नाम योगेन है।

अटल दा पर तो मानो आसमान गिर पड़ा हो। और तब भी [illegible] यह इतना नहीं सोचते।

उन्होंने पूछा—आप ही योगेन हैं?

—हां !

—आप ही के नाम पुलिस ने दस हज़ार रुपयों के पुरस्कार की घोषणा की थी ?

—हां। ब्रोजेन को आज तक कोई नहीं पकड़वा सका है। किसीको यह मालूम ही नहीं कि ब्रोजेन ज़िन्दा भी है या नहीं, ज़िन्दा है भी तो कहां-किस दशा में है ? सबको तो यही मालूम है कि ब्रोजेन इण्डिया छोड़कर भाग गया है। जर्मनी, रशिया, अमेरिका, तोकियो, वह कहीं भी हो सकता है, रासविहारी वासु की तरह। आज पहली बार तुम्हें ही सच्ची बात बता रहा हूं। अटल दा विस्मय भरी नज़रों से मंगल बाबू को देखते रहे। मंगल बाबू बोले—तुमसे यही आशा रखता हूं बेटा, कि तुम पहले की तरह ही मुझे मंगल बाबू ही समझोगे। मध्यमवर्ग का एक बीमार बूढ़ा किरानी ही समझना, बेटा। यही याद रखना कि तबीयत खराब रहने की वजह से मैं नौकरी छोड़कर किसी तरह दिन काट रहा हूं। शायद यहां से भाग सकता तो अच्छा होता। ज़्यादा काम भी कर सकता। स्वास्थ्य भी इस कदर नहीं टूटता।

अटल दा ने कहा—आप ठीक कह रहे हैं; आपको बाहर चले जाना चाहिए था। पर आप गए क्यों नहीं ?

मंगल बाबू बोले—बाहर जाना अच्छा तो रहता, यह मैं भी जानता था, पर मुझपर उस समय उससे भी किसी बड़े काम का बोझ था।

—कौन-सा काम ?

—उस कमरे में जो है, वह कुन्ती ! उस कुन्ती के कारण ही मुझे यहां रह जाना पड़ा।

—अपनी पुत्री की वजह से ?

मंगल बाबू अपने गले को और भी गम्भीर बनाकर बोले—लोग उसे मेरी बेटी ही समझते हैं। कुन्ती भी समझती है कि मैं उसका बाप हूं।

—आप उसके बाप नहीं ?

—नहीं।

१५

बीसवीं सदी के शुरू का बंगाल। क्रान्ति की लहर धीरे-धीरे सिर उठा रही थी। कभी आयरलैण्ड ने भी इसी तरह अपना सिर उठाया था। दुनिया में जहाँ भी आम आदमियों पर अत्याचार हुआ है, क्रान्ति ने वहीं जन्म लिया है। और क्रान्ति का झण्डा जिन लोगों ने फहराया है, वे हमेशा ही मध्यम वर्ग के लोग रहे हैं। समाज का सबसे सजीव वर्ग मध्यम वर्ग ही है। मंगल बाबू भी इसी मध्यम वर्ग के प्रतिनिधि थे। उन्होंने जिस तरह उस युग की यन्त्रणा का अनुभव किया था, वैसा अटल दा अनुभव नहीं कर सकते थे। यही बात वह अटल दा को समझाया करते।

१९०२ में बोअर वार समाप्त हो चुका था। रशिया और जापान के बीच एक और लड़ाई की तैयारी हो रही थी। इसी समय भारत में गुप्त समितियाँ गठित करने का संकल्प लिया गया। इसके पीछे जिस महिला की विशेष प्रेरणा थी, वह थी सिस्टर निवेदिता।

पहली बार किसी क्रान्तिकारी की जबान से अटल दा ने उन दिनों का इतिहास सुना। अब तक तो उन्होंने पढ़ा ही था, अब आँखों देखा प्रामाणिक वर्णन सुनने को मिला।

अटल दा ने कहा—आप लोगों को कभी डर नहीं लगता था?

—डर किस बात का? किससे डरें? क्यों डरें? क्रान्तिकारियों के लिए डरना ही मरना है। मेरा एक दोस्त था सत्येन। सत्येन का नाम तुमने सुना होगा?

—सुना है।

सच पूछो तो सत्येन खुदीराम का गुरु था। हम दोनों मेदिनीपुर के मियाँ बाजार के अखाड़े में कुश्ती लड़ना सीखते थे। एक ही साथ दोनों ने अग्निपथ की शपथ खाई थी। हम दोनों का रास्ता और एक ही था। जब वह पकड़ा गया, मैं भाग खड़ा। जान के डर,

—हां !

—आप ही के नाम पुलिस ने दस हज़ार रुपयों के पुरस्कार की घोषणा की थी ?

—हां । ब्रोजेन को आज तक कोई नहीं पकड़वा सका है । किसीको यह मालूम ही नहीं कि ब्रोजेन ज़िन्दा भी है या नहीं, ज़िन्दा है भी तो कहां-किस दशा में है ? सबको तो यही मालूम है कि ब्रोजेन इण्डिया छोड़कर भाग गया है । जर्मनी, रशिया, अमेरिका, तोकियो, वह कहीं भी हो सकता है, रासविहारी बासु की तरह । आज पहली बार तुम्हें ही सच्ची बात बता रहा हूं । अटल दा विस्मय भरी नज़रों से मंगल बाबू को देखते रहे । मंगल बाबू बोले—तुमसे यही आशा रखता हूं बेटा, कि तुम पहले की तरह ही मुझे मंगल बाबू ही समझोगे । मध्यमवर्ग का एक बीमार बूढ़ा किरानी ही समझना, बेटा । यही याद रखना कि तबीयत खराब रहने की वजह से मैं नौकरी छोड़कर किसी तरह दिन काट रहा हूं । शायद यहां से भाग सकता तो अच्छा होता । ज्यादा काम भी कर सकता । स्वास्थ्य भी इस कदर नहीं टूटता ।

अटल दा ने कहा—आप ठीक कह रहे हैं; आपको बाहर चले जाना चाहिए था । पर आप गए क्यों नहीं ?

मंगल बाबू बोले—बाहर जाना अच्छा तो रहता, यह मैं भी जानता था, पर मुझपर उस समय उससे भी किसी बड़े काम का बोझ था ।

—कौन-सा काम ?

—उस कमरे में जो है, वह कुन्ती ! उस कुन्ती के कारण ही मुझे यहां रह जाना पड़ा ।

—अपनी पुत्री की वजह से ?

मंगल बाबू अपने गले को और भी गम्भीर बनाकर बोले—लोग उसे मेरी बेटी ही समझते हैं । कुन्ती भी समझती है कि मैं उसका बाप हूं ।

—आप उसके बाप नहीं ?

—नहीं ।

पर आशु बाबू ने मन ही मन सोचा था कि अगर लड़के की शादी कर दी जाए तो वह रात को शायद जल्दी ही घर वापस आएगा।

आशु बाबू के दोस्तों ने भी यही सलाह दी। कहा—आपकी पत्नी की भी तो उम्र हो चुकी है। उन्हें भी बात करने के लिए कोई मिल जाएगा। आपकी कोई लड़की भी तो नहीं है। उसी समय से आशु बाबू अटल दा के लिए लड़की ढूंढने लगे।

बहुत खोजने के बाद यह रिश्ता उन्हें पसन्द आया था। यही अमीपुर वाला रिश्ता। एक दिन चुपचाप वह इन्दुलेखा देवी को देख भी आए। आशु बाबू के दोस्तों ने कहा—आपको अच्छा सम्बन्ध मिल गया है। बस, यहीं शादी कर दीजिए। समधी धनी है। आपके लड़के को भी बल और भरोसे की जरूरत है। धनी बाप की इकलौती बेटी—क्या कम बड़ी बात है!

जिस समय आशु बाबू अटल दा की शादी की तैयारी कर रहे थे, उस समय अटल दा किसी और ही दुनिया में बस रहे थे। खाने-पीने की भी सुध नहीं रहती थी। अटल दा को एक नई प्रेरणा मिली थी। गृहस्थी की चक्की तो सभी पीसते हैं। नौकरी भी सभी करते हैं। जंगल का जानवर भी पेट भरने के उपाय जानता है। इतना पढ़-लिखकर अटल दा भी क्या वही करेंगे? फिर अटल दा और दूसरों के बीच अन्तर ही क्या रहेगा?

मंगल बाबू ने कहा था—मेदिनीपुर के मिया बाजार के पास एक टूटे मकान में हम लोगों का एक खुफिया अड्डा था। वहीं एक काली की मूर्ति की भी स्थापना की थी हमने। नौकर-चाकर तो थे नहीं। खाना बनाना, बर्तन मांजना सब काम हम लोग अपने ही हाथों करते। सामने वाले कमरे में एक करघा बैठा रखा था, जिस पर हर समय एक—आधा बुना कपड़ा टंगा रहता था। हम लोग उसी करघे वाले कमरे में मिलते। हम मानो खुदीराम, प्रफुल्ल, निगमदा राय और सत्येन। उस समय मानो हम आदमी नहीं, अग्नि-स्फुलिंग थे।

मंगल बाबू ने अपनी बात जारी रखी—आज के बच्चे उन दिनों की बातें नहीं जानते। सोम-बाण तो अब निष्क्रिय होकर जी रहे हैं। टेगार्ट

नहीं। यही सोचकर भागा कि जो काम सत्येन नहीं कर पाया, उसे मैं पूरा करूंगा। पर मुझे हराकर वह जीत गया। इस इतिहास को तो सभी जानते हैं। तुम भी जानते हो ?

—जानता हूं।

अटल दा इस इतिहास से परिचित थे। हर रोज काम-काज से निपटकर अटल दा एक बार मंगल बाबू के यहां जरूर जाते थे। उस युग की क्रान्तिकारियों की बातें सुनते-सुनते किसी-किसी दिन तो अधिक रात हो जाती। तब तक कुन्ती क्लब छोड़ चुकी थी। फ्राक छोड़कर साड़ी पहनने लगी थी। लाठी चलाना अब उसे नहीं शोभता था। मंगल बाबू को तो इसमें कोई आपत्ति नहीं थी, पर समाज नहीं मानता था। उन दिनों इतनी बड़ी लडकी क्लब तो क्या सड़क पर भी नहीं निकलती थी।

कहानी सुनते-सुनते अटल दा पूछते—उसके बाद ?

मंगल बाबू कहते—आज रात काफी हो गई है। बाकी कल सुनना।

मंगल बाबू के घर जाना अटल दा का एक नशा हो गया था। किसी भी क्लब के लड़के अब अटल दा को पहले जितना पास नहीं पाते। सब यही सोचते—अटल दा किसी बड़े काम में उलझे हुए हैं। घर के लोगों के लिए भी उनका दर्शन अब मुश्किल हो गया था।

कभी-कभार आशु बाबू पूछते—कल इतनी रात कहां थे ?

अटल दा छोटा-सा उत्तर देते—काम था।

—कौन-सा काम ? कहां का काम, कैसा काम ? अपना काम या पराये का काम ?

अटल दा कुछ नहीं कहते। अटल दा जो ठीक समझते, वही करते। अटल दा बातें कम करते। पढ़ने-लिखने की बात उन्हें कभी कहनी नहीं पड़ी। उनके लिए कभी ट्यूटर की भी जरूरत नहीं पड़ी। वह हमेशा अपनी कोशिश से ही फर्स्ट आए। अपनी भलाई-बुराई भी वह अच्छी तरह समझ सकते थे, इसलिए आशु बाबू भी बेटे को कुछ नहीं कहते।

सत्येन से कभी नहीं पूछा, क्योंकि मैं जानता था कि सत्येन इस तरह के अनाथ-दुखी लोगों की सहायता करता रहता है। जिस दिन मेदिनीपुर में पुलिस आकर सत्येन को पकड़कर ले गई, सारे मेदिनीपुर के लोग हैरान रह गए। पुलिस हमें भी पकड़ सकती थी, पर घटनास्थल से मैं पुलिस की आंख बचाकर निकल गया और दूसरे ही दिन मैंने मेदिनीपुर छोड़ दिया।

पर थाने के दिन सुबह ही एक घटना घटी। पौ फटते ही मैं घर से निकला था। अन्धकार पूरा साफ भी नहीं हुआ था। बाजार बन्द था। उसी बाजार के मोड़ पर एक आदमी मेरे सामने आकर रुका। उसके साथ एक छोटी-सी लड़की थी। बिल्कुल छोटी-सी। दो या तीन साल की रही होगी।

मैंने पूछा—कौन?

मन ही मन थोड़ा डर भी गया था। पर हिम्मत दिखाकर छाती तानकर खड़ा रहा।

वह आदमी बोला—आपके साथ कुछ काम था।

—लेकिन आप हैं कौन?

उस आदमी ने कहा—नाम बताने पर आप मुझे पहचानेंगे नहीं। मुझे सत्येन ने भेजा है।

—सत्येन?

सुनकर मैं विचलित हो गया। अपनी प्रतिज्ञा की बात भूल गया। लगा, यह आदमी पुलिस का भी हो सकता है। मुझे फंसाना चाहता है। असल में सत्येन को पुलिस ने इतना अचानक पकड़ा था कि उसका कारण मैं भी ठीक-ठीक नहीं समझ सका था। उन दिनों पुलिस इतनी चुपचाप धर-पकड़ करती थी कि एक घण्टे पहले तक भी उसका आभास नहीं होता था। बंगाली लोग ही अंग्रेजी पुलिस के जासूस होते थे, पर स्वतन्त्रता-संग्राम में बंगाली लड़कों ने बड़ी हिम्मत भी दिखाई है। सत्येन का नाम सुनकर मैं चौंक गया था। वह आदमी शायद मेरी मनोदशा भाप गया था। बोला—कोई ऐसी-वैसी बात नहीं। असल में सत्येन बाबू ने ही आपके लिए कहा था। उन्होंने आपको किसी छोटी लड़की का भार उठाने के लिए कहा था?

साहब को देखकर लोग डर से कांपते हैं। पुलिस देखकर कमरे में छुप जाते हैं। कैसे कारपोरेशन के काउन्सलर बनें, इसकी चिन्ता लगी रहती है। पर उस समय हमारी भावनाएं कुछ और ही थीं। सत्येन के बड़े भैया के पास दो नालों वाली एक बन्दूक थी। उसका सत्येन ने बिना लाइसेंस के इस्तेमाल किया था। एक दिन सत्येन को शक हो गया कि पुलिस उसके पीछे पड़ गई है। मुझसे सत्येन ने कहा भी—देख ब्रोजेन, अगर पुलिस मुझे पकड़ भी ले तो तुझे एक काम करना पड़ेगा।

—क्या काम है, बोल !

सत्येन बोला—इस दुनिया में किसीका भार या उत्तरदायित्व मुझपर नहीं है। मेरे मर जाने पर किसीको कोई घाटा नहीं होगा, कोई क्षति नहीं पहुंचेगी, सिर्फ एक को छोड़कर।

मैंने पूछा—कौन ? तेरे भैया ज्ञाननाथ बाबू ?

सत्येन बोला—नहीं। भैया को मैं श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूं। वह भी मुझे मानते हैं, पर भैया की बात नहीं।

—तो फिर किसके लिए कह रहा है ?

सत्येन बोला—वह मेरी अपनी कोई नहीं। उसके सम्बन्ध में मुझसे कभी कुछ नहीं पूछना, पर एक बात जान ले कि मेरी तरह उसका भी अपना कोई नहीं। उसका सारा भार एक तरह से मैं ही ढोता हूं। यदि मैं पकड़ा जाऊं तो उसका क्या होगा, मैं यही सोच रहा हूं।

मैंने कहा—उसके लिए तू चिन्ता मत कर। तेरा भार मैंने अपने ऊपर लिया।

सत्येन बोला—तो फिर कसम खा कि उनकी बात तू कभी किसीको नहीं बताएगा। वे लोग कौन हैं, मेरे कौन लगते हैं, यह भी नहीं।

मैंने कहा था—प्रतिज्ञा करता हूं, ये बातें दूसरों को कभी नहीं बताऊंगा। सत्येन बोला—जब मैं जेल से लौटूंगा तब फिर उनका दायित्व उठा लूंगा और तुम्हें मुक्त कर दूंगा। उसी समय यह भी बताऊंगा कि ये कौन हैं। यह भी बताऊंगा कि मैंने क्यों तुझे ही इस बोझ को उठाने के लिए कहा था।

सच में वे कौन थे, सत्येन के साथ उनका क्या रिश्ता था, यह मैंने

मंदार बाबू बोले—नहीं। उसे सब कुछ कहूंगा, यह बात तो सत्येन के साथ नहीं हुई थी। मैंने तो सिर्फ वचन दिया था कि मैं कुन्ती का भार उठाऊंगा।

अटल दा ने पूछा—आपका असल नाम योगेन है, इस बात को कुन्ती जानती है ?

—नहीं, उसे कुछ भी नहीं मालूम। मेरे अलावा एक तुम्हीं को ये बातें मालूम हैं। और भी दो-एक जने जानते हैं; पर उनमें से किसी को फांसी हो गई है, और कोई मर गया है।

मैं तुम्हें भी इतनी बातें शायद नहीं कहता। पर बहुत दिनों से तुम्हें देख रहा हूं न। मैंने तुम्हें ठीक पहचाना है। तुम्हारे बीच मैं अपने को पा सका हूं। तुम्हीं कुछ कर सकोगे, अटल ! जरूर कर सकोगे। जब दूसरे लड़कों को देखता हूं, तब मन निराशा से भर जाता है। बचपन में हम लोगों ने अंग्रेजों को यहां से भगाने के लिए साधना की थी। उस समय तुम्हारी तरह के कुछ लड़के थे, पर आज उनकी संख्या घट रही है। तुम्हारे बीच मैं आज अपने पुराने 'मैं' को देख पा रहा हूं, इसीलिए आज तुम्हें इतनी सारी बातें कह दीं। अब मेरे दिन तो पूरे हो चुके हैं।

—जानता हूं, मैं अब और अधिक दिनों तक नहीं जी सकूंगा। और फिर चिरकाल इस संसार में जीता ही कौन है ! मुझसे तो कुछ नहीं हो सका, यह तुम देख ही रहे हो। बचपन में मैं जिस नाम से जाना जाता था, उस नाम को मैं आज जीभ पर भी नहीं ला सकता। जो मुझे इस पथ पर लाए, उनकी कोई भी कामना मुझसे पूरी नहीं हुई। मैं हार गया, भाई ! सिर्फ सत्येन को मैंने जो वचन दिया था, केवल उसे ही जी-जान से निभा पाया हूं। यही मेरी खुशी है और यही मेरा सन्तोष।

अटल दा ने पूछा—उस दिन से आपका असल परिचय कोई नहीं जानता ?

मंदार बाबू बोले—नहीं, कोई भी नहीं।

—फिर अब तक आप किस परिचय से जी रहे हैं ?

मंदार बाबू बोले—मैं कलकत्ता कारपोरेशन में एक क्लर्क हूं, यही मेरा एकमात्र परिचय है।

मैंने कहा—हां, हां। सत्येन ने मुझसे कहा तो था।

—यह रही वह लड़की।

मैंने लड़की को देखा। अधमैली फ्राक पहने एक छोटी-सी लड़की। हमारी बातचीत वह कुछ भी नहीं समझ पा रही थी। चुपचाप उस आदमी का हाथ पकड़े खड़ी थी। मैं सोच में पड़ गया। अभी कहीं बाज़ार के लोग जग जाएं तो हमें देख लेंगे, पहचान भी लेंगे। उसके बाद सर्वनाश में देर नहीं रहेगी।

—अच्छा तो मैं चलता हूं।

मैं चौंककर मानो जाग उठा। मुंह उठाकर देखा तो वह आदमी लड़की को छोड़ चला जा रहा था। और वह लड़की भी अजीब थी। न तो रो रही थी और न ही उस आदमी को बुला रही थी। मैं पुकारने ही जा रहा था—'ओ साहब, पर न मालूम क्यों गले से आवाज़ ही नहीं निकली। चुपचाप देखता रहा। वह आदमी धीरे-धीरे आंखों से ओझल हो गया। अब मैंने लड़की की तरफ देखा। वह भी मुझे देख रही थी। शायद मुझे समझना चाह रही थी।

पर ज़्यादा सोचने का वक्त नहीं था। ट्रेन का समय हो रहा था। टिकट खरीदना बाकी था। उसके लिए भी समय चाहिए। मैं लड़की का हाथ पकड़कर स्टेशन की तरफ तेज कदमों से चलने लगा। लड़की भी निर्विकार भाव से मेरे साथ चलने लगी।

उसके बाद कब तो मैंने टिकट खरीदा, कब कलकत्ता पहुंचा, कुछ खयाल नहीं है। सत्येन के सामने शपथ खाई थी, उसे वचन दिया था कि उसका सौंपा दायित्व निभाऊंगा, इसलिए उसे निभाना ही पड़ेगा। आजीवन।

—हां, तो मैं कह रहा था कि उसी दिन से मैं मंगलमय सरकार बना गया। भूल ही गया कि कभी मेरा नाम ब्रोजेन भी था। मैं अपनी ही नज़र में अपरिचित बन गया। अब मैं कुन्ती का बाप बन चुका था।

ब्रोजेन बाबू की कहानी सुनते-सुनते उस दिन काफी रात हो गई थी। बाहर जोरों की बारिश हो रही थी। अटल दा ने खिड़की से बाहर झांका, फिर पूछा—लेकिन कुन्ती? क्या ये बातें उसे मालूम हैं?

मदन बाबू बोले—नहीं। उसे सब कुछ कहूंगा, यह बात तो सत्येन से तय नहीं हुई थी। मैंने तो सिर्फ वचन दिया था कि मैं कुन्ती का भार उठाऊंगा।

अटल दा ने पूछा—आपका असल नाम ब्रोजेन है, इस बात को कुन्ती जानती है?

—नहीं, उसे कुछ भी नहीं मालूम। मेरे अलावा एक तुम्हींको ये बातें मालूम हैं। और भी दो-एक जने जानते हैं, पर उनमें से किसीको फांसी हो गई है, और कोई मर गया है।

मैं तुम्हें भी इतनी बातें शायद नहीं कहता। पर बहुत दिनों से तुम्हें देख रहा हूं न। मैंने तुम्हें ठीक पहचाना है। तुम्हारे बीच मैं अपने को पा गया हूं। तुम्हीं कुछ कर सकोगे, अटल! जरूर कर सकोगे। जब दूसरे लड़कों को देखता हूं, तब मन निराशा से भर जाता है। बचपन में हम लोगों ने अंग्रेजों को यहां से भगाने के लिए साधना की थी। उस समय तुम्हारी तरह के कुछ लड़के थे, पर आज उनकी संख्या घट रही है। तुम्हारे बीच मैं आज अपने पुराने 'मैं' को देख पा रहा हूं, इसीलिए आज तुम्हें इतनी सारी बातें कह दी। अब मेरे दिन तो पूरे हो चुके हैं।

—जानता हूं, मैं अब और अधिक दिनों तक नहीं जी सकूंगा। और फिर चिरकाल इस संसार में जीता ही कौन है! मुझसे तो कुछ नहीं हो सका, पर तुम देख ही रहे हो। बचपन में मैं जिस नाम से जाना जाता था, उस नाम को मैं आज जीभ पर भी नहीं ला सकता। जो मुझे इस धरती पर लाए, उनकी कोई भी कामना मुझसे पूरी नहीं हुई। मैं हार गया, भाई! सिर्फ सत्येन को मैंने जो वचन दिया था, केवल उसे ही जी-जान से निभा पाया हूं। यही मेरी खुशी है और यही मेरा सन्तोष।

अटल दा ने पूछा—उस दिन से आपका असल परिचय कोई नहीं जानता?

मदन बाबू बोले—नहीं, कोई भी नहीं।

—तो फिर अब तक आप किस परिचय से जी रहे हैं?

मदन बाबू बोले—मैं कलकत्ता कारपोरेशन में एक क्लर्क हूं, यही मेरा एकमात्र परिचय है।

—यहां नौकरी करते समय किसीको शक नहीं हुआ कि असल में आप कौन है ? अटल दा ने पूछा।

मंगल बाबू बोले—नहीं। एक बार मैं देशबन्धु चित्तरंजन दास से मिला था। उन्होंने मुझसे दो-एक बातें पूछी थीं। मेरा खद्दर का पहनावा देखकर वह समझ गए कि मैं कोई देशभक्त हूं। अधिक कुछ उन्होंने पूछा नहीं और नौकरी मुझे मिल गई।

—उसके बाद ? अटल दा ने पूछा।

— उसके बाद जब से मैंने नौकरी में पैर रखा, क्लर्क ही रह गया। और कुछ बनना भी तो मैंने नहीं चाहा। बन भी नहीं सका। और कुछ बनता तो शायद वह मेरी भूल होती। सत्येन मुझपर जो भार सौंप गया था, उसे मैं इसके बिना ढो नहीं सकता था। उसे कौन देखता ?

—क्यों ?

मंगल बाबू बोले—कुन्ती मेरी लड़की नहीं है, यह जानने पर कुन्ती को बहुत बड़ा आघात पहुंचेगा। मैं भी अपने वचन से डिग जाऊंगा। लोगों में तो यही बात रहनी चाहिए कि कुन्ती मेरी लड़की है। मैं कुन्ती की भलाई चाहता हूं। यही चाहा भी था। मेरी अपनी भलाई से सत्येन को दिया गया वचन मेरे लिए ज्यादा कीमती है। तुम्हें नहीं मालूम, मैंने कैसे दुर्योग के दिन काटे हैं। अगर नहीं सुना है तो मुझसे सुनते जाओ। उन दिनों 'वन्दे मातरम' का उच्चारण भी अपराध माना जाता था। उस अपराध के विरुद्ध लड़ने के लिए हमें उतना ही कठोर बनना पड़ता था। हम लोग ब्रह्मचर्य का जीवन बिताते थे। सोचते थे, यदि हम यह कष्ट भोगेंगे तो हमारी बाद वाली पीढ़ी चैन से रहेगी। वह स्वतन्त्र भारत की गोद में सोकर आराम की सांस ले सकेगी। यही तो हमारा साध्य था। अपने सुख से अधिक हम लोग चरित्र-गठन पर ध्यान देते थे।

—पर किसी-किसी दिन कुन्ती के लिए दुश्चिन्ता सताती थी। कुन्ती कौन है ? कौन उसका बाप है ? कौन उसकी मां है ? जो आदमी उसे मेरे पास छोड़ने आया था, वह कौन था ? बहुत-सी बातें दिमाग में आती थीं। सोच-सोचकर थक जाता था, पर कोई हल नहीं निकाल सकता था। लेकिन मन में पक्का विश्वास था कि सत्येन कोई गलत काम नहीं कर

सकता। ईश्वर के मन में मैल हो सकता है, पर सत्येन के मन में नहीं। हो सकता है सत्येन स्वयं किसीसे प्रतिज्ञावद्ध था। किसीसे उसने कहा होगा कि उसको अनाथ लड़की का भार वह लेगा। और मुझपर सत्येन का बहुत भरोसा था, शायद इसी कारण उस लड़की का भार मुझपर सौंपकर वह हंसता हुआ फांसी पर लटक गया। मेरे साथ उसकी अन्तिम भेंट नहीं हो सकी, पर वह जहां भी रहे, मैं यही सोचकर खुश रहता हूं कि मैं उसकी बात रख सका। यह भार मैं आजीवन ढो सकता था, पर आयु की भी तो एक सीमा होती है। आजकल उसीकी अन्तिम पुकार सुनाई देती है। लगता है, अब तो थोड़े ही दिन रह गए हैं। अपने बाद कुन्ती को मैं किसे दे जाऊंगा?

अचानक अटल दा बोल पड़े—कुन्ती का भार अगर मैं ले लूं तो आपको कोई आपत्ति होगी?

—आपत्ति होगी मुझको? एक विषाद की हसी हंसकर मंगल बाबू ने कहा—इससे बड़ी खुशी मेरे लिए और क्या हो सकती है, अटल? मुझे तो मुक्ति मिली, बेटा! मैं निश्चिन्त हो सका। मेरी मुट्ठी में मानो स्वर्ग आ गया। बड़ी दुश्चिन्ता से आज तुमने मुझे छुटकारा दिलाया। मैं तुम्हारा हमेशा के लिए कृतज्ञ रहूंगा।

उसके बाद शायद अटल दा जान भी नहीं सके, सोच भी नहीं सके कि उन्होंने कितने चिन्तनीय भार को अपनाया था। कैसा दारुण बोझ जीवन-भर के लिए अपने कन्धों पर उठाया था।

एक दिन अस्वस्थ मंगल बाबू और भी अस्वस्थ हो गए। वह उनकी बीमारी का आखिरी दौर था। उस बीमारी की हालत में ही अटल दा का विवाह, कन्यादान, परिणय सब कुछ हो गया। भवानीपुर के एक छोटे-से किराये के फ्लैट के आंगन में बीमार मंगल बाबू की आंखों के सामने अटल दा और कुन्तीदेवी के जीवन में चरम दुर्योग के दिन घिर आए।

पर अटल दा को त्याग में विश्वास था, अपनी शक्ति में विश्वास था, ब्रह्मचर्य में विश्वास था। अटल दा के लिए मां-बाप से बड़ा उनका देश, उनकी मातृभूमि थी। और उस समय कुन्ती भी तो अटल दा की मन्त्र-शिष्या थी और अटल दा उसके आदर्श पुरुष। उनके साथ आने को

सौंपकर कुन्ती भी अपने को धन्य समझने लगी ।

मंगल बाबू ने आखिरी आशीर्वाद दिया । बोले—तुम दोनों सुखी रहो । दोनों मिलकर देश को प्यार करो, उसका कल्याण करो । मैं और कुछ नहीं चाहता ।

छोटा-सा उत्सव । इस संसार के मात्र तीन प्राणियों को मालूम थी उस दिन की घटना । कब की, कहां की, अवहेलित-अज्ञात एक लड़की, नाग की तरह अटल दा के जीवन के हर मोड़ के साथ जुड़ गई ।

सिर पर आंचल डालकर कुन्ती ने अटल दा को प्रणाम किया । दो जीवन उस दिन एकाकार हो गए ।

मरते समय मंगल बाबू बोल गए—मैंने तुम्हें जो कुछ भी कहा, वह तुम्हारे-हमारे बीच गोपन रहना चाहिए । और किसीको नहीं मालूम होना चाहिए ।

अटल दा ने कहा—ऐसा ही होगा ।

१६

यह बात अगर यहीं खत्म हो जाती तो अटल दा को लेकर उपन्यास लिखने की जरूरत ही नहीं पड़ती । अबीर बोस ने भी यही कहा था । बोला—आदमी शादी करता है, तो घोषणा करके करता है । इसीलिए शायद लोगों को निमन्त्रण दिया जाता है । दस को साक्षी मानकर खिलाने का भी रिवाज है । आज लगता है, यह नियम एक प्रकार से अच्छा ही है । पहले सोचता था, यह अपव्यय है, पर यह बात नहीं ।

सच में, जब हम अटल दा के नाम पर मुग्ध थे, उनकी बातों को वेद-वाक्य मानते थे, उसी समय उन्होंने अन्दर ही अन्दर हमारी आस्था को हिला दिया था । हम समझते रहे कि अटल दा को बहुत काम है, वह देश को महान बनाने के बड़े कामों में जुटे हैं । दूर से हम उन्हें प्रणाम करते थे, उन्हें श्रद्धा करते थे । सोचते थे, बिना कारण बातें करने से उनका समय नष्ट होगा ।

शायद उसी तरह चलता रहता। हो सकता है, उसी तरह से किसी दिन अटल दा के साथ-साथ कुन्तीदेवी का जीवन भी ऐश्वर्य से महिमान्वित हो उठता, पर ऐसा हुआ नहीं।

क्यों नहीं हुआ, इसकी व्याख्या करने का दायित्व मुझपर नहीं है। मनुष्य का जीवन क्या गणित का मेल है ? क्या वह रूल आफ थ्री है ? गणित में दो और दो मिलकर चार बनते हैं, पर गणित-शास्त्र में क्या जीवन के मूल्यबोध को आंका जा सकता है ?

अगर है तो फिर क्यों बारिसाल मेल के डकैती के कारण जिस ब्रोजेन को ढूंढा जा रहा था, वह ब्रोजेन मंगल बाबू बनकर कलकत्ता शहर में छुपता रहा ? अटल दा के अलावा इस सच्चाई को और कौन जानता था ? क्या अटल दा को मालूम था कि मनुष्य के सबसे बड़े गुणों और आदर्शों के अधिकारी बनकर भी वह इस तरह बह जाएंगे ? हम, तुम या और नाम जने जिस तरह से जी रहे हैं, सोच रहे हैं, बड़े हो रहे हैं, अटल दा भी तो उसी ढंग से बड़े बन सकते थे। बड़े बनकर किसी सरकारी आफिस में बड़ी नौकरी कर सहज ढंग से सुखी जीवन बिता सकते थे। बाकी लोग जिस तरह दुनिया के साथ समझौता कर जीते हैं, उसी तरह समझौते की राह अपनाते तो हम लोग अटल दा को वाह्वाही देते, उनकी प्रशंसा करते, उनकी मृत्यु के बाद चन्दा इकट्ठा कर एक स्मृति-स्तम्भ भी बना देते।

पर कौन जाने ! हो सकता है, समझौते की राह अपनाकर ही अटल दा की ऐसी परिणति हुई। अगर कुन्तीदेवी से अटल दा ने विवाह किया था तो यह बात उन्होंने किसीको बताई क्यों नहीं ? हर रोज रात गए घर लौटने के कारण आशु बाबु ने एक दिन फिर पूछा—इतनी रात गए कहां थे ?

अटल दा बराबर सच बोलने के आदी थे। बोले—मुझे काम रहता है।

आशु बाबू बोले—पर घर में भी तो काम रह सकता है। इस बुढ़ापे में क्या मुझसे सारे काम हो सकते हैं ? मेरी उम्र ढल चुकी है, यह भी तो सोचो।

कर कुन्ती भी अपने को धन्य समझने लगी ।

मंगल बाबू ने आखिरी आशीर्वाद दिया । बोले—तुम दोनों सुखी हो । दोनों मिलकर देश को प्यार करो, उसका कल्याण करो । मैं और कुछ नहीं चाहता ।

छोटा-सा उत्सव । इस संसार के मात्र तीन प्राणियों को मालूम थी उस दिन की घटना । कब की, कहां की, अवहेलित-अज्ञात एक लड़की, सांप की तरह अटल दा के जीवन के हर मोड़ के साथ जुड़ गई ।

सिर पर आंचल डालकर कुन्ती ने अटल दा को प्रणाम किया । दो जीवन उस दिन एकाकार हो गए ।

मरते समय मंगल बाबू बोल गए—मैंने तुम्हें जो कुछ भी कहा, वह तुम्हारे-हमारे बीच गोपन रहना चाहिए । और किसीको नहीं मालूम होना चाहिए ।

अटल दा ने कहा—ऐसा ही होगा ।

१६

यह बात अगर यहीं खत्म हो जाती तो अटल दा को लेकर उपन्यास लिखने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती । अघोर बोस ने भी यही कहा था बोला—आदमी शादी करता है, तो घोषणा करके करता है । इसीलि शायद लोगों को निमन्त्रण दिया जाता है । दस को साक्षी मान खिलाने का भी रिवाज है । आज लगता है, यह नियम एक प्रकार अच्छा ही है । पहले सोचता था, यह अपव्यय है, पर यह बात नहीं

सच में, जब हम अटल दा के नाम पर मुग्ध थे, उनकी बातों को वाक्य मानते थे, उसी समय उन्होंने अन्दर ही अन्दर हमारी आस्थ हिला दिया था । हम समझते रहे कि अटल दा को बहुत काम है, व को महान बनाने के बड़े कामों में जुटे हैं । दूर से हम उन्हें प्रणाम थे, उन्हें श्रद्धा करते थे । सोचते थे, बिना कारण बातें करने से उनक नष्ट होगा ।

शायद उसी तरह चलता रहता। हो सकता है, उसी तरह से किसी दिन अटल दा के साथ-साथ कुन्तीदेवी का जीवन भी ऐश्वर्य से महिमान्वित हो उठता, पर ऐसा हुआ नहीं।

क्यों नहीं हुआ, इसकी व्याख्या करने का दायित्व मुझपर नहीं है। मनुष्य का जीवन क्या गणित का मेल है? क्या वह रूल आफ थ्री है? गणित में दो और दो मिलकर चार बनते हैं, पर गणित-शास्त्र से क्या जीवन के मूल्यबोध को आंका जा सकता है?

अगर है तो फिर क्यों बारिसाल मेल के डकैती के कारण जिस ब्रोजेन को ढूंढा जा रहा था, वह ब्रोजेन मगल बाबू बनकर कलकत्ता शहर में घूमता रहा? अटल दा के अलावा इस सच्चाई को और कौन जानता था? क्या अटल दा को मालूम था कि मनुष्य के सबसे बड़े गुणों और आदर्शों के अधिकारी बनकर भी वह इस तरह बह जाएंगे? हम, तुम या और दास जने जिस तरह से जी रहे हैं, सोच रहे हैं, बड़े हो रहे हैं, अटल दा भी तो उसी ढंग से बड़े बन सकते थे। बड़े बनकर किसी सरकारी आफिस में बड़ी नौकरी कर सहज ढंग से सुखी जीवन बिता सकते थे। बाकी लोग जिस तरह दुनिया के साथ समझौता कर जीते हैं, उसी तरह समझौते की राह अपनाते तो हम लोग अटल दा को वाहवाही देते, उनकी प्रशंसा करते, उनकी मृत्यु के बाद चन्दा इकट्ठा कर एक स्मृति-स्तम्भ भी बना देते।

पर कौन जाने! हो सकता है, समझौते की राह अपनाकर ही अटल दा की ऐसी परिणति हुई। अगर कुन्तीदेवी से अटल दा ने विवाह किया था तो यह बात उन्होंने किसीको बताई क्यों नहीं? हर रोज रात गए घर लौटने के कारण आशु बाबू ने एक दिन फिर पूछा—इतनी रात गए कहां थे?

अटल दा बराबर सच बोलने के आदी थे। बोले—मुझे काम रहता है।

आशु बाबू बोले—पर घर में भी तो काम रह सकता है। इस बुढ़ापे में क्या मुझसे सारे काम हो सकते हैं? मेरी उम्र ढल चुकी है, यह भी तो सोचो।

अटल दा इसका क्या उत्तर दे सकते थे ! चुप रहे। .

पर आशु बाबू चुप नहीं बैठे। अटल दा की शादी की तैयारी करने लगे। जीते-जी लड़के की गृहस्थी बसा देना उनका कर्तव्य था।

उस दिन भी यथावत अटल दा घर से निकलने ही वाले थे।

आशु बाबू बोले—अभी कहीं मत जाओ। तुम्हें थोड़ी देर तक घर में रहना पड़ेगा।

—क्यों ? अटल दा ने पूछा।

आशु बाबू ने सोचा, लड़के को सारी बातें खुलकर बताना शायद ठीक नहीं रहेगा। बेटा आपत्ति कर सकता है। इसीलिए उसको कुछ बताए बिना वह अपने काम में लग गए। पर अटल दा को शक हो गया। मन ही मन वह छटपटाने लगे। उन्हें लगा, उनके विरुद्ध कोई षड्यन्त्र चल रहा है। उस दिन सुबह से ही उनका मन भारी था।

मां से जाकर अटल दा ने पूछा—मां, आज घर में किस चीज का आयोजन हो रहा है ? क्या है घर में ?

मां ने कहा—वे लोग आज तुम्हें देखने के लिए आएंगे !

—मुझे देखने के लिए ? अटल दा मानो आकाश से गिरे। बोले—मैं कोई शेर या भालू हूं, जो लोग मुझे देखने के लिए आएंगे।

—हां बेटे ! आज बात पक्की हो जाएगी।

अटल दा के सिर पर सच में बिजली गिर पड़ी। इधर में कई दिनों तक अटल दा घर भी नहीं आए थे। आते भी तो बहुत रात को। सिर्फ सोने के लिए। इसी बीच उनके विरुद्ध इतना बड़ा षड्यन्त्र रचा गया था, वह भांप भी नहीं पाए थे।

इस षड्यन्त्र के विरुद्ध अटल दा की अन्तरात्मा विद्रोह कर बैठी।

अटल दा ने कहा—मैं इस घर में नहीं रह सकता, मां ! हरगिज नहीं रहूंगा। मैं अभी जा रहा हूं।

इतना कहकर वह दरवाजे की तरफ भागे ही थे कि लड़की वालों की गाड़ी आकर दरवाजे पर रुकी। गाड़ी से लड़की के पिता, पुरोहित और दो-चार सजे-धजे व्यक्ति उतरे। अटल दा बिलकुल उनके सामने पड़ गये।

आशु बाबू भी बाहर आए। नमस्कार वगैरह की औपचारिकता हुई। सभीको लाकर बैठक में बैठाया गया।

परिवार मध्यम वर्ग का था। बैठक भी मध्यम वर्ग के परिवार की तरह की ही थी। उसके लिए किसीको संकोच या शर्म करने की कोई बात नहीं थी, क्योंकि सारी बातें जानकर ही वह लड़की दे रहे थे। लड़का मेधावी, स्वस्थ और सच्चरित्र था। लड़के के बारे में उन्होंने बड़ी छान-बीन की थी। सबने कहा था—लड़का नहीं, रत्न है। किसी दिन यह जीवन की सफलता की सबसे ऊंची सीढ़ी पर पहुंचेगा। मुहल्ले के, गैर-मुहल्ले के, सभीने यही कहा था कि वह लाखों में एक है। इसीलिए लड़की के बाप ने लड़के के बाप की आर्थिक स्थिति पर गौर नहीं किया। उनकी तरफ से कोई शिकायत नहीं थी। आशु बाबू के लिए भी शर्माने लायक कुछ नहीं था।

पर ताज्जुब है! अटल दा तो ताज्जुब वाले आदमी निकले! एकदम ताज्जुब वाला व्यवहार था उनका। बात पक्की हो जाने पर सगाई और आशीर्वाद की रस्म भी लड़की वालों ने पूरी कर दी और आयोजन के अन्त तक अटल दा यह सारा अत्याचार चुपचाप सहते गए। उन्होंने शायद इस-लिए सहा कि उसके बाद मुक्ति का उपाय उन्हें मालूम था। बाप के लिए यह मामूली अत्याचार वह अनायास सह सकते थे। उसके बाद तो अटल दा हमेशा के लिए कलकत्ता छोड़कर लापता हो जाने वाले थे। अगर कोई भूल उनसे हुई भी तो उस भूल के लिए उनसे जवाब मांगने वाला कौन था? जवाब देने के लिए वह अपनी परिचित दुनिया और दायरे में लौटकर आनेवाले थे ही नहीं। लोग उन्हें ढूंढ़ेंगे, तो ढूंढ़ें।

और फिर वह प्रोजेन बाबू का जीवन भी तो जानते थे। देश की स्वतन्त्रता के लिए जो झूठ अपनाया जाता है, उसे मिथ्या नहीं कहा जाता। जीवन की अपेक्षा देश बड़ा है। पारिवारिक कर्त्तव्यों से देश के प्रति कर्त्तव्य महान है। यहां तक कि बाप से भी बड़ा विवेक है।

खैर! लड़की वालों ने उस दिन खुशी-खुशी विदा मांगी। उनके जाते ही अटल दा भी घर से निकल पड़े।

उस समय कुन्ती की नई-नई शादी हुई थी। शादी का मतलब आमूल परिवर्तन। जब तक यह आदमी कुन्ती का गुरु बना रहा, आदर्श पुरुष था। अटल दा को कुन्ती कुछ और ही दृष्टि से देखती; पर बाप के मरने के बाद कुन्ती ने अटल दा का कुछ और ही रूप देखा। अब तक उसके पिता ही उसके जीवन में एकमात्र पुरुष थे; पर हर पुरुष एक जैसा नहीं, इसका प्रमाण कुन्ती को पति के रूप में अटल दा को पाकर मिला। न जाने अटल दा दिन-रात क्या सोचते रहते। कुन्ती पूछती—इतना भी क्या सोचते हो हर समय ?

—कहां ! कुछ भी तो नहीं। कहकर अटल दा कुन्ती की बात टाल जाते। अटल दा को हर समय लगता, वह कुन्ती के सामने पकड़े जाएंगे। प्रश्न केवल कुन्ती का ही नहीं था, आस-पड़ोस, हर जगह पकड़े जाने का प्रश्न उन्हें सता रहा था। अटल दा को बचपन से ही सभीका प्यार मिला था, श्रद्धा मिली थी। एक सिरे से लोगों ने उनकी तारीफ के पुल बांधे थे। निन्दा, शिकायत, बदनामी का दुर्भोग उन्हें कभी नहीं सहना पड़ा। अटल दा के लिए यश सस्ता था, प्रशंसा उनका प्राप्य था। इस यश के लिए अटल दा को कभी कोई कीमत नहीं चुकानी पड़ी थी। यह उन्हें अनायास मिलता था। उस सहज प्राप्ति के पथ पर मानो पहली बार किसीने बाधा पहुंचाई। उसके बाद ही से अटल दा को लगने लगा कि लोग उनपर शक करने लगे हैं। कहीं सबको उनकी बात का पता चल गया तो लोग उन्हें श्रद्धा के आसन से उतारकर मिट्टी में पछाड़ देंगे। इसी डर से अटल दा छुपते फिर रहे थे।

सड़क चलते कहीं किसी पुराने दोस्त से भेंट हो जाती तो अटल दा अनदेखी कर जाते। कोई अगर पूछ लेता—क्यों भई, क्या हाल है तुम्हारा ? क्या कर रहे हो आजकल ? तो अटल दा कहते—चलता हूं यार, कुछ काम है।

—इतना भी क्या काम है, जरा बताओ भी तो !

अटल दा कहते—काम की भी कोई सीमा है क्या ? और कहकर री तरफ भागकर जान बचाते ।

बात सच भी थी । अटल दा को क्या कोई एक काम था ! अटल दा मारी तरह कोई साधारण आदमी तो थे नहीं कि जब चाहे घर पर मिल ते या फिर दिन भर दफ्तरों की सभाओं में बेकार पड़े मिलते । अटल तो औलिया थे । अटल दा स्वयं में एक प्रतिभा थे । वह असाधारण ।

लोगों से जितनी अधिक श्रद्धा मिलती गई, अटल दा उतने ही संकुचित होते गए । अगर लोगों को पता चल जाए ? अगर वह पकड़े जाएं ? इसी-लिए अटल दा ने सबकी नजर बचाकर दूर रहकर श्रद्धा पाने की जो सहज रीति है, उसे ही अपना लिया । भक्तों के सामने खड़े होकर सम्मान प्राप्त करने की क्षमता को अटल दा ने खो दिया ।

कुन्ती पूछती—आज दिन भर कहां थे ?

अटल दा कहते—काम-काज में फंसा था ।

—कौन-सा काम ?

अटल दा कहते—काम क्या एक है ? आज बराहनगर जाना था ।

कुन्ती कहती—पर तुमने तो कहा था कि आज रुपये लाओगे । रुपये का कोई बन्दोबस्त हुआ ? दो महीनों से किराया बाकी पड़ा है ।

पर अटल दा कुन्ती के सामने सरासर झूठ बोल जाते । असल में दिन-भर वह एकान्त में किसी मैदान में घास पर बैठकर समय काट देते । कभी पार्क में किसी खाली बेंच पर बैठकर आकाश से पाताल तक ख्याली पुलाव पकाते रहते ।

कभी-कभी उन्हें ऐसा लगता था—यह उन्हें हो क्या गया है ? क्या सब कुछ मिथ्या है ? जब उनके पास पैसे नहीं थे, नौकरी नहीं थी, तब वह क्यों प्रोजेन बाबू को वचन देने गए ? क्या वह भी दूसरों की नजर में महान बनने के लिए ? अपने को महाप्राण सिद्ध करने के लिए ?

कभी-कभी वह सोचते—किसी नौकरी की कोशिश करनी चाहिए । नौकरी करना चाहें तो लोग खुशी से उन्हें रख लेंगे । पर वहां भी तो वही समस्या रह जाएगी । तब तो सबकी तरह वह मामूली बनकर र

जाएंगे। पर, यदि सामान्य स्तर पर उतरकर जीवन विताने पर पहले-जैसी श्रद्धा और भक्ति न मिली, तो ? लोग अगर पूछें—अटल दा ने इतना पढ़-लिखकर क्या किया ? हम इतने कम पढ़े-लिखे उनसे क्या बुरे हैं ? अटल दा और हममें कोई फर्क नहीं ?

दिन-भर मैदान के चक्कर लगा-लगाकर अटल दा वेचैन हो जाते। यह कलकत्ता, यह वंगाल, यह भारत, सारी दुनिया के सामने मानो अटल दा तुच्छ हो गए थे। पहले जैसे लोग उनसे ईर्ष्या भी नहीं करते थे। यह भी उनके लिए एक अजीव यन्त्रणा थी। यह एक दण्ड था, अभिशाप था।

रात में अटल दा थोड़ी देर के लिए कुन्ती के घर पहुंचते। उनको देखते ही कुन्ती वही प्रश्न दुहराती—नौकरी मिली ?

—नौकरी ? मैं नौकरी करूंगा ? नौकरी ही करनी होती तो पहले ही कर सकता था। तुम क्या समझती हो, मैंने किसी मामूली आदमी की तरह नौकरी करने के लिए जन्म लिया है ? पहले-पहले तो कुन्ती अटल दा के साथ वातें करती थी। उस समय उसका मोह भंग नहीं हुआ था।

कहती—तुम नौकरी नहीं करोगे तो कैसे क्या होगा, कहो ? किस तरह गुज़ारा होगा ?

अटल दा कहते—मेरे साथ जव तुम्हारा जीवन जुड़ ही गया है, तव जिस तरह मेरा चलता है, तुम्हारा भी चलना चाहिए।

···मेरी वात छोड़ो। तुम्हारा भी तो नहीं चल रहा है।

अटल दा कहते—मेरी वात सोचने की तुम्हें ज़रूरत नहीं।

कुन्ती कहती—मेरा भी कैसे गुजारा होगा, यह तो तुम्हें सोचना ही पड़ेगा। और अगर सोचना नहीं चाहते तो मुझसे शादी क्यों की ?

इस वात का जवाव देते समय अटल दा जैसे धीर पुरुप भी अपना धैर्य खो वैठते—पर फिर स्वयं को संभाल लेते। कभी-कभी उनके मन में इच्छा होती कि वह कुन्ती को सव वातें खुलकर वता दें। कुन्ती कौन थी ? उसका परिचय क्या था, क्यों उन्होंने उससे शादी की। सव वातें वताकर फिर हमेशा के लिए यह रिश्ता तोड़कर वह कहीं और चले जाएं।

पर यह तो तात्कालिक चिन्तना थी। मन में उठे सवाल को अटल दा मन में ही संजो लेते। कुन्ती की बात पर चुप ही रहते। और फिर सारा विरोध मन पर लादे बदहवास-से अपने मकान में लौट आते, थोड़ी देर के लिए वह शान्त मन से कुन्ती को माफ कर देते। फिर उन्हें याद आ जाता कि वह साधारण मनुष्यों की तरह सिर्फ जीने के लिए संसार में नहीं आए थे। दुनिया के पाँच आम आदमियों की तरह सिर्फ घिसटने के लिए पैदा नहीं हुए थे। दुनिया के सभी आम आदमियों की तरह आटे, दाल, नमक, मिर्च की चिन्ता से माथा-पच्ची करना उनका काम नहीं था।

वह महत् क्षण में जन्मे महापुरुष थे। स्वामी विवेकानन्द की तरह अटल दा भी गृह-त्यागी थे। स्वामी विवेकानन्द की तरह ही दुनिया के आवेदन-निवेदन की परवाह करने पर उनका काम नहीं चलने का। अपने आदर्श और लक्ष्य की प्राप्ति में बाधाएं आना तो स्वाभाविक ही था, इन बाधाओं से ऊपर उठने में ही उनका महत्त्व था। इन बाधाओं के अतिक्रमण में ही अटल दा अपना गौरव मानते थे।

मैंने पूछा—उसके बाद ?

अघोर घोष ने कहा—मन ही मन जब हम अटल दा की पूजा कर रहे थे, सोच रहे थे कि अटल दा बच्चों को आदमी बनाने की साधना में जुटे हुए हैं, व्यस्त हैं, जब हम जी-जान से विश्वास कर रहे थे कि अटल दा अपनी तपस्या में लीन हैं, उस समय वह पागलों की तरह इधर-उधर घूम रहे थे। उस समय उन्होंने किसी को बिना बताए चुपचाप शादी कर ली थी। गोपन परिणय की पीड़ा मन में छुपाकर वह तिल-तिल करके मानो आत्महत्या कर रहे थे।

कुन्ती कहती—मेरा भार अगर नहीं उठाओगे तो मैं जाऊंगी कहां ?

अटल दा कहते—क्यों ? जहां तुम हो, वहीं रहो।

—और तुम ?

अटल दा कहते—तुमसे शादी की है, इसलिए क्या मैं तुम्हारा खरीदा हुआ गुलाम बन गया ? मेरा क्या अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं ?

—कौन कहता है कि नहीं है ? मैंने तो यह नहीं कहा ।

अटल दा झल्ला उठते—तुम्हारे लिए, सिर्फ तुम्हारे लिए मेरा पढ़ना-लिखना, मेरी साधना, तपस्या सब व्यर्थ गई । इस तरह से तो मैं कुछ ही दिनों में पागल हो जाऊंगा ।

—उससे पहले मैं पागल हो जाऊंगी । इन दिनों मेरा अपना भी दिमाग ठीक नहीं है ।

—अगर पागल हो ही गई हो तो खामखा किसी और को पागल करने पर क्यों तुली हो ?

—मेरे लिए क्या तुम जरा भी नहीं सोचते ? क्या मैं तुम्हारी कोई नहीं ? अग्नि को साक्षी मानकर तुमने क्या मुझसे शादी नहीं की ? बोलो ? मुझे छूकर बोलो ?

अटल दा थोड़ी देर तक स्थिर मूर्तिवत खड़े रहते । आंखें फाड़कर देखते रहते, मानो क्रोध के आवेश में कुछ भी कर बैठने वाले हों, पर तुरन्त ही अपने को संभाल भी लेते । बोलते—कुन्ती, तुम मुझे जरा भी शान्ति नही दे सकतीं क्या ?

—शान्ति ?

कुन्ती मानो मन ही मन हंस पड़ती । बड़ी उदास-सी हंसी । बोलती —शान्ति तुमने क्या मुझे एक क्षण के लिए भी दी है ?

—जानती हो, तुम्हारे लिए मैंने कितना बड़ा त्याग किया है ?

—बोलो, क्या त्याग किया है तुमने ? सुनाओ अपने त्याग की लिस्ट ?

—इसके माने ? तुम जानती हो, तुमसे शादी करने के पहले मुझमें कितनी शक्ति थी ? मेरा कितना सम्मान था ? कितना काम रहता था मुझे ? लोग मुझमें कितनी श्रद्धा रखते थे, इसका तुम अन्दाज भी नहीं लगा सकतीं ।

—खूब जानती हूं । कभी मैं भी तुम्हें बड़े सम्मान की दृष्टि से देखती थी ।

—मेरा यह सम्मान अब सहा नहीं जाता कुन्ती? क्यों मैं सर ऊंचा कर लोगों से नहीं मिल सकता, बातें नहीं कर सकता? बोलो, क्यों नहीं कर सकता?

—बोलूं? सच बात बताऊं?

—हां, कहो!

—तुमने स्वयं को एक बहुत बड़े भुलावे में रखा है। दरअसल तुममें कोई गुण नहीं। परीक्षा में फर्स्ट आने के अलावा तुममें और कोई गुण नहीं। लोगों ने तुम्हें बढ़ा चढ़ाकर बड़ा बना दिया है। सच तो तुम कभी भी बड़े नहीं रहे। तुम चाहते हो, लोग विशिष्ट सभाओं में तुम्हारा सम्मान करें, तुम्हें गुरु मानें। पर सच में गुरु बनना क्या इतना आसान है? तुमने कुछ किए बिना ही सबसे ऊपर उठना चाहा था।

कुन्ती की बात अटल दा को अच्छी नहीं लगी। बोले—मेरे प्रति तुम्हारी यही धारणा है?

—तुम मेरी राय जानना चाहते थे, इसीलिए मुझे यह कहना पड़ा। मैंने तुम्हारी अनुमति लेकर ही कहा है।

—ठीक है, अगर मुझसे श्रद्धा नहीं रख सकती तो मुझे छोड़ दो। विदाई दो। मुझे इस तरह कष्ट क्यों दे रही हो?

गुस्से में अटल दा जाने लगे।

पीछे से कुन्ती अटल दा का हाथ पकड़ लेती। बोलती—कहां जा रहे हो?

—जहां मेरी मर्जी।

—मर्जी के अनुसार जाने पर तो काम नहीं बनेगा। यह मत भूलो कि तुमने मुझसे शादी की है।

—शादी की है, इसलिए मेरा क्या कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं?

कुन्ती और भी जोर से अटल दा का हाथ पकड़ लेती, बोलती—नहीं।

—इसका मतलब?

—मतलब तुम अच्छी तरह जानते हो। मैं तुम्हारी सहधर्मिणी हूं। मुझसे अलग तुम्हारा कोई अस्तित्व नहीं। अगर तुम समझते हो कि मैं

कानून तुम्हें रोकेगा ?

—तुम मुझे कानून सिखा रही हो !

—पुलिस-कानून के अलावा भी दुनिया में कानून है। अगर भगवान को मानते हो तो उनका भी एक कानून है। यह दुनिया जिसके बनाए नियमों से बंधी है, चन्द्र, सूर्य, ग्रह-नक्षत्र जिसके बनाए नियमों के बल पर चल रहे हैं, उसका भी तो एक कानून है। वही कानून तुम्हें रोकेगा।

—मैं वह कानून नहीं मानता।

—तुम्हारे न मानने पर भी कानून तो किसीकी नहीं सुनेगा। और मैं भी क्यों सुनूंगी ?

अटल दा से और नहीं सहा जाता। बोलते—तुम सुनोगी या नहीं, उसे लेकर मैं क्यों सिरदर्दी मोल लूं ? मैं तो चला।

उस दिन इतना कहकर वह झटके से कुन्ती का हाथ छुड़ाकर बाहर जाने के लिए उठ खड़े हुए। पर उसके पहले कुन्ती ने अटल दा के कुर्ते का छोर पकड़ लिया। इस खिंचाव से अटल दा का कुर्ता फट गया। अटल दा चौंककर रुक गए। फटे कुर्ते की तरफ एक नजर डालकर बिना किसी तरफ देखे वहां से चल दिए।

कुर्ते के फट जाने के कारण कुन्ती भी संकोच में पड़ गई थी ? प

जब तक उसे होश आया, अटल दा वहां से जा चुके थे।

१८

कुन्ती के विवाहित जीवन में इस तरह की घटना पहली बार
थी। अटल दा के जीवन में भी यह अपने ढंग की पहली घटना थी।
से ही लोगों की श्रद्धा, उनका प्यार, सद्भावना और सम्मान प
अटल दा का अहम् सीमा पर पहुंच चुका था। उन्हें हमेशा लगता
वह क्यों दूसरों के आगे छोटे बनें ? क्यों वह दूसरों की आलोचना
बनें ? वह तो कोई गलती ही नहीं कर सकते। अगर उनसे क
हो भी जाती है तो लोगों को उसे ठीक समझना चाहिए। अटल

जीनियस थे, अटल दा की भूल किसी जीनियस की भूल थी—जो भूल नहीं मानी जानी चाहिए।

उसके बाद एक दिन वह निर्धारित लग्न भी आया।

अटल दा की शादी का निमन्त्रण-पत्र आशु बाबू बांट भी चुके थे। उन दिनों रात को अटल दा कमरे की बत्ती बुझाकर सारी रात अंधेरे में जाग कर काट देते। दिमाग मे आता, सारे आयोजन-उत्सव को छोड़-छाड़कर अन्तिम मुहूर्त में कहीं भाग जाएं, जहां उन्हें कोई नहीं जाने, कोई नहीं पहचाने। जहां जाने पर उनका अतीत बिलकुल मिट जाए—जहां जीवन नये सिरे से, नये ढंग से आरम्भ किया जा सके। सोच-सोचकर अटल दा पूरब के चांद को पश्चिम में ढकेल देते।

आशु बाबू पूछते—तुम्हारा चेहरा मुरझता क्यों जा रहा है, अटल ?

अटल दा से कोई जवाब न पाकर आशु बाबू डर जाते। अब बीच में सिर्फ एक ही दिन रह गया था। किसी तरह वह दिन अगर टल जाए तो वह विपत्ति से उबर सकते हैं।

पत्नी से आकर आशु बाबू ने कहा—अटल इतना उदास क्यों है ?

अटल दा की मां बोलीं—कहां ? मुझे तो ऐसा कुछ नहीं लगा।

—तुमसे कुछ कहा है अटल ने ? आशु बाबू ने पूछा।

—नहीं तो ! आपको कुछ कहा है क्या ?

—नहीं। कहेगा क्या ? फिर बोले—कई दिनों से रट रहा था, शादी नहीं करूंगा।

आशु बाबू की पत्नी बोलीं—वह तो हर लड़का कहता है।

—मैं जरा घबरा गया था, सोच रहा था, कहीं उन सज्जन पुरुष के सामने बेइज्जत न होना पड़े। अटल बराबर का जिद्दी ही रह गया।

कई दिनों तक अटल दा घर से निकले ही नहीं। जो लड़का रात-दिन बाहर घूमता-फिरता रहता था—वह एकाएक घर बैठने लगेगा, इतना स्थिर होकर बैठेगा, इसकी भी कल्पना कौन कर सकता था ?

शादी की खरीदारी समाप्त हो चुकी थी। अटल दा की शादी में काम करने के लिए आदमियों की कमी तो थी नहीं। आशु बाबू जो कहते हुम तुरन्त करने के लिए तैयार रहते। आटा, मैदा, घी, चीनी, जरूरत की हर

म लोग मिलकर खरीद लाए थे। शादी के दो-चार दिन पहले से
तेदारों का जमघट शुरू हो गया था। शहनाई का आर्डर भी दे
गया था।

पर अटल दा दिन-भर अपने कमरे में चुपचाप पड़े रहते। पहले हम
ों से भेंट होने पर बातें करते थे, पर अब देखकर भी चुप रहते। मैंने
ा, अटल दा का चेहरा बड़ा उदास लग रहा था। पूछा भी—तुम्हारी
ीयत तो ठीक है न अटल दा?

गम्भीर आवाज में अटल दा ने कहा—नहीं।

क्या पता? मुझे तो लगा, शायद शादी के दिन सभी लड़कों का
चेहरा अटल दा की तरह सूख जाता होगा—उपवास जो करना पड़ता है।
सूखना स्वाभाविक भी था।

मैंने फिर पूछा—तुम्हारा काम-काज कैसा चल रहा है अटल दा?

अटल दा बोले—ठीक ही चल रहा है।

मुझे लगा, हम लोगों से बात करना अटल दा को अच्छा नहीं लग
रहा था।

फिर भी मैंने पूछा—इतने गम्भीर क्यों हो अटल दा?

अटल दा ने मानो एक जबर्दस्ती की हंसी हंसी। ओठों के सूख
जाने पर जिस तरह की हंसी निकलती है, अटल दा की हंसी ठीक वैसी
ही थी। यह हंसी अटल दा की नहीं थी। आदमी रोने के बाद ऐसी हंसी
हंसता है। देखकर हम लोग हैरान रह गए।

थोड़ी देर के बाद अटल दा बोले—मैं बड़े सोच में पड़ा हूं।

मैंने पूछा—क्यों? तुम्हें किस बात की चिन्ता है अटल दा?

अटल दा बोले—चिन्ता कोई एक है? चारों तरफ कितना काम
है, पर मैं कुछ भी नहीं कर पा रहा।

उस समय अन्दरूनी बातों का हमें कहां पता था? अटल
के अन्दर जो आंधी चल रही थी उससे तो हम बेखबर थे। हमें इस ब
का क्या पता कि कुन्तीदेवी को भी कुछ मालूम नहीं होगा। चुपचाप
कुन्तीदेवी को बिना बताए यहां भागकर जान बचा रहे हैं। अटल द
सोचा होगा कि कुन्ती देवी को कुछ मालूम ही नहीं होगा। चुपचाप

शादी कर वह यहाँ दूर चले जाएंगे। अनजान-अपरिचित शहर में नई नौकरी और नई दुलहन के साथ गृहस्थी बसा लेंगे।

भूल आदमी ही करता है। आदमी के लिए ही भूल सम्भव है, देवताओं के लिए नहीं।

पर आज समझ सकता हूं कि वह अटल दा की भूल नहीं थी, उनकी नासमझी थी। सबकी नजर में बड़ा बनूंगा, सबसे श्रद्धा-भक्ति पाता रहूंगा, सबके ऊपर रहूंगा, यह धारणा भी तो एक किस्म की नासमझी ही है।

और गल्ती में, क्यों हम लोगों ने अटल दा को इतना ऊंचा उठाया! असली दोष तो हमीं लोगों का था। इसीलिए अब जब अटल दा की विवेचना करता हूं, तब लगता है, चोट जीवन के लिए लाभदायक है। अवहेलना, अनादर स्वास्थ्यप्रद है। बचपन में मुहल्ले के लड़कों से, मां-बाप बड़े-बुजुर्गों से आदर और सम्मान पाकर ही सम्भवतः अटल दा ऐसे हो गए थे। सबकी दृष्टि में गिर जाने के डर से ही अटल दा ने ऐसी बेवकूफी की थी—नहीं तो और क्या कारण हो सकता था?

खैर! शादी के दिन हम लोग सज-धजकर बराती बनकर चल पड़े थे।

अधीर घोष ने कहा—उसके आगे क्या हुआ, वह तो मुझे मालूम ही है। आप, याद जिस बात के लिए डर रहे थे, उसका कुछ नहीं हुआ। इतनी आसानी से अटल दा सब कुछ मान लेंगे, इसकी कल्पना भी किसी को नहीं थी। जो अटल दा बराबर मूली खद्दर आदतन पहनते थे, उन्हीं अटल दा ने उस दिन तसर सिल्क का कुर्ता पहना, जरी के किनारी वाली धोती बांधी। दूल्हा बनकर गाड़ी में बैठकर शादी करने के लिए निकल पड़े।

उस समय तक हममें से किसी के मन में कोई सन्देह नहीं उठा था।

मैंने तो यही सोचा था कि शादी करते समय हर लड़का ही इतना विनयी और नम्र हो उठता है।

मैंने सोचा था कि विवाह जीवन का एक स्मरणीय परिच्छेद है—शायद इसी कारण थोड़ी-सी लज्जा, थोड़ा-सा संकोच मिलकर वर को सहिष्णु बना देते हैं। उस दिन लोग उसे जो भी कुछ कहते हैं, वह सुनता है, मानता है। जो अटल दा बराबर हम लोगों को उपदेश देते रहे, स्वामी विवेकानन्द की ब्रह्मचर्य की वाणी सुनाते रहे, उनका ऐसा व्यवहार देख सच में हम मूक बन गए थे। पर मैंने यही सोचकर संतोष कर लिया कि अटल दा आखिर समाज से बाहर के कोई जीव तो हैं नहीं। वह भी समाज के पाश में से एक हैं, फिर विवाह क्यों नहीं करेंगे! महात्मा गांधी, सी० आर० दास, विद्यासागर से लेकर जब रामकृष्ण परमहंस तक ने शादी की थी तब अटल दा के शादी करने पर हम क्यों निराश हो रहे थे!

यह बात शायद इसलिए भी दिमाग में आई थी कि वर के वेश में अटल दा बिलकुल ही निरीह और बेवकूफ-से लग रहे थे। चेहरे की वह दृढ़ता, व्यक्तित्व की वह धार कहां गई? क्या सभी दूल्हे शादी के वक्त ऐसे ही दिखते हैं? मैंने अब तक दुनिया में जितनी शादियां देखी थीं, उन दूल्हों के चेहरों को याद करने की मैंने कोशिश की।

आश्चर्य की बात तो यह थी कि हम ऐसी धारणा भी नहीं बना सकते थे कि अटल दा की दशा उस समय भय और चिन्ता से पागलों-सी थी। हमारे लिए यह कल्पना करना भी कठिन था कि उनके एक और भी पत्नी थी। हम सोच भी नहीं सकते थे कि एक पत्नी के रहते हुए भी दूसरी शादी कर वह अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे थे।

लेकिन यह भी क्या अटल दा की नासमझी ही थी? कभी-कभी सोचता हूं, अगर नासमझी ही थी तो अटल दा इतने विचलित क्यों थे? अबोध, अनजान आदमी तो लापरवाह होता है, निडर और विवेकशून्य भी। तो फिर?

तो फिर क्या अटल दा की बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी?

बुद्धि भ्रष्ट होने पर ही अटल दा की तरह के लोग अपने मंगल-अमंगल को नहीं समझ सकते। वह अपराध से अपराध को ढकना चाहते हैं।

विवाह-मण्डप में हम लोग अटल दा के पास-पास ही थे। मैंने देखा, अटल दा पसीने से तर हैं। सोचा, नमर सिल्क का कुर्ता पहन रखा है, शायद इसीलिए इतना पसीना आ रहा है। अटल दा का पसीना कम नहीं हुआ। अटल दा को इतना पसीना बहाते देखकर हम लोग हैरान रह गए, क्योंकि अटल दा तो साधारण आदमी नहीं थे। अटल दा क्यों हमारी तरह असहाय लग रहे थे? अटल दा ने मुझे बुलाकर कहा था—सुन! एक गिलास पानी देने के लिए कह दे।

मैंने कहा था—पानी पीओगे अटल दा? शादी होने तक तो तुम्हें कुछ खाना-पीना नहीं चाहिए।

—न नहीं। बड़ी प्यास लगी है रे! अटल दा ने कहा था। मैं पानी लाने के लिए आखिर किसे कहता? आसपास लड़की वालों के कई लोग थे। उन्हींमें से किसीको बुलाकर एक गिलास पानी के लिए कहा। उसने पानी दिया या नहीं, मुझे देखने का मौका नहीं मिला, क्योंकि उसी समय खाने की बुलाहट आई और हम खाने के लिए चल पड़े थे।

उसके बाद कब शादी की रस्में शुरू हुईं, मालूम नहीं। क्योंकि उस समय तो हम गरम पूरी, भाजी, लड्डू-पेड़े और पुलाव खाने में मग्न थे। अचानक ही उधर से शोर सुनाई दिया था। हड़बड़ाकर दूसरों के साथ मैं भी भागा था और वहां जाकर देखा तो अजीब ही तमाशा था।

१६

मैंने पूछा—उसके बाद?

अधीर बोस ने बताया—उसके बाद की घटना तो तुम लोगों को मालूम ही होगी। इतने दिनों के बाद आज मामला साफ हो गया, भई।

असल में तब से ही अर्थात् उस घटना के बाद ही अटल दा अब वह अटल दा नहीं रह गए थे। उनका जीवन-सूर्य अस्ताचल पर चला गया।

आज इतने दिनों के बाद मैं समझ सका कि अटल दा का यह अधःपतन क्यों हुआ। उस दिन, शादी की उस रात अटल दा को जिस बात का डर था, जिस कारण उनका पसीना अबाध गति से बह रहा था, वही हुआ। अपने कृत्य की आशंका से उनका कण्ठ सूखा जा रहा था।

अटल दा की शादी तो सम्पन्न ही हो गई थी। बाद की खबर से मैं बेखबर हो रहा। जिस अटल दा को बदामतल्ले में नहीं देखकर मैंने सोचा था कि वह रांची चले गए हैं, वही अटल दा उस समय भवानीपुर में कुन्ती के घर रह रहे थे—भला, इसकी कल्पना भी हम कैसे कर सकते थे ?

उस समय डायरी रखने की मुझे आदत नहीं थी। घटनाओं की तारीख याद नहीं कर सकता। पर अधीर बोस की सारी बात सुनकर फिर से मुझे कुछ-कुछ याद आने लगा। पर जो चिट्ठी अटल दा ने लिखी थी, उसपर 'रांची' ही तो लिखा था।

रांची से ही तो अटल दा ने लिखा था : हमारी जाति की रीढ़ टेढ़ी हो चुकी है। इसे ठीक करना पड़ेगा। तुम आदमी बनो। वचन और कर्म में एक बनो। लोगों में एकता पैदा करनी पड़ेगी, क्योंकि एकता ही शक्ति है। मैं लौटकर आऊंगा, तब क्लब के बच्चों को यही बताऊंगा कि हमें नए सिरे से सोचना पड़ेगा। शिक्षा अगर सार्थक नहीं हुई तो जीवन व्यर्थ है।

इस तरह की बहुत-सी बातें लिखी थीं अटल दा ने।

आज इतने दिनों के बाद सब कुछ फिर याद आ रहा है। यह चिट्ठी फिर किसने लिखी थी ? किस अटल दा ने ? जो अटल दा उस समय कुन्तीदेवी से विवाह रचाकर अन्तर्द्वन्द्व से क्षत-विक्षत होकर स्वर्ग, मर्त्यलोक और पाताल की परिक्रमा कर रहे थे ? या फिर वह अटल दा, जो बदामतल्ले के आदर्श लड़के थे— स्वामी विवेकानन्द के आदर्श मन्त्र-शिष्य ? एक ही आदमी में ये परस्पर दो विरोधी चरित्रों का कैसा समावेश ?

पर अतीत में अटल दा ने जो कुछ किया था, जो भी भूल उनसे हुई थी, क्या इतने दिनों के बाद भी उसका प्रायश्चित्त नहीं हुआ था ?

और इसे मूल ही क्यों कहा जाए ? [illegible]
योगेन बाबू के आदर्श ? वर्तमान के [illegible]
था, जिसे पकड़ने के लिए पुलिस ने [illegible]
घोषणा की थी, अटल दा ने क्यों [illegible]
उठा लिया ? और अगर [illegible]
सांचे में ढाल सके ? क्यों [illegible]
सबकी श्रद्धा-भक्ति पाने के लिए [illegible]
सेवा में अपने अहम् को नहीं [illegible] ?

अचानक ही मैंने कहा—मैं बहूबाजार गया था, अटल दा से मिलने।

सोचा था, मेरी बात सुनकर इन्दुलेखा देवी चौंक उठेंगी। पर नहीं। बड़े ही शान्त-संयत स्वर से बोलीं—कैसे हैं ?

मैंने कहा—अच्छे नहीं हैं।

—पर मैंने तो सुना है इन दिनों वह अच्छे ही हैं।

इन्दुलेखा देवी के प्रश्न का जवाब दिए बिना मैंने कहा—आप उन्हें बचाना क्यों नहीं चाहतीं ?

अब इन्दुलेखा देवी चौंक उठीं। बोली—आपके ऐसा कहने का आशय ?

मैंने फिर कहा—आप उन्हें जीवित रखना चाहती हैं, या मार डालना चाहती हैं ?

थोड़ी देर चुप रहने के बाद वह बोलीं—आप क्या कहना चाहते हैं, मैं ठीक से समझ नहीं सकी।

मैंने और स्पष्ट शब्दों में कहा—पेण्ड्रा रोड में अटल दा के अच्छे होने की खबर पाकर भी आपने अचानक ही वहां रुपये भेजने बन्द क्यों कर दिए ? उन्हें फिर कलकत्ता क्यों बुलाया ? कलकत्ता में इतनी जगहें रहते हुए भी बहूबाजार के सीलन भरे उस मकान में क्यों रखा ?

मेरे मुंह से इतना कुछ सुनना पड़ेगा, इसकी कल्पना शायद इन्दुलेखा देवी ने नहीं की थी।

मैंने कहा—कुछ कहिए ! मेरी बातों का जवाब दीजिए !

इन्दुलेखा देवी मानो पत्थर की मूर्त्ति बनी बैठी रहीं।

बहुत देर के बाद बोलीं—ये बातें आपको किसने बताईं ?

मैंने कहा—जिसने भी कहा हो, बात सच है या नहीं, यह आपको बताना पड़ेगा। मैं आपसे जवाब मांगने आया हूं। आपने लोगों को यही बताया है कि हजारों रुपये अपने रुग्ण पति के पीछे खर्च करती रही हैं और अभी भी कर रही हैं। यही विश्वास दिलाया है कि पति के लिए आप सुबह से शाम तक खटती रहती हैं। पर आपने किसके लिए इतने बड़े छल का सहारा लिया ? इससे किसका भला होगा ? आपका या फिर अटल दा का ?

इन्दुलेखा चुप रहीं। मेरी बात का जवाब उन्होंने नहीं दिया।

मैंने कहा—चुप मत रहिए। जवाब दीजिए। आज आपसे जवाब लेकर ही यहां से हिलूंगा। तमाम लोगों की आंखों में आप देवी बनी बैठी हैं। इसका असली उद्देश्य क्या है, मैं यह जानना चाहता हूं।

इन्दुलेखा देवी ने आंखें झुका लीं। बोली—आपने सब कुछ सुना है?

—हां, सुना है। सुना भी है और विश्वास भी किया है। अब सिर्फ आपकी बात सुनने के लिए मुझे यहां आना पड़ा है, क्योंकि अटल दा मेरे गुरु हैं।

—आपके गुरु?

—हां! मैंने इतने दिनों तक आपको कुछ नहीं कहा था। किन्तु उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप यही बताइए कि आप इतनी निष्ठुर कैसे बन गयीं? लोग अधमरे चूहे के तड़पने का तमाशा देखते हैं, क्या अटल दा को आपने वैसा ही तमाशा बना रखा है?

मैंने देखा इन्दुलेखा देवी की आंखों से आंसू टपक रहे थे। साड़ी के पल्लू से आंखें पोंछकर बोली—यही कहने आप मेरे यहां आए हैं?

—हां! नहीं तो आपसे मेरी और क्या बात हो सकती थी?

—तो फिर आज आप यह समझकर जाइए कि अपने पति की भलाई या बुराई के लिए मैं चाहे जो भी करूं, किसीको कुछ कहने का अधिकार नहीं। मेरे पति की भलाई भी मेरे हाथों में है, और नुकसान भी। इससे आपको क्या?

इन्दुलेखा देवी जैसी धीर-स्थिर, शान्त मूर्ति की जुबान से ऐसी बातें सुनकर मैं तो हतप्रभ रह गया।

इन्दुलेखा देवी बोलीं—जिस दिन जान-बूझकर मेरे पति ने मेरा सर्वनाश किया था, मेरे बाप को ठगकर मुझसे शादी की थी, आपने उस दिन मेरे पति से जवाब मांगा था? मेरे ऊपर अत्याचार के विरुद्ध उनके घर जाकर उन्हें धिक्कारने के लिए भी आप नहीं गए होंगे। तो फिर आज मुझसे क्यों मेरे कामों की जवाबदेही चाहते हैं! जाइए! आप यहां से चले जाइए···

यह सुनकर मेरे गले से आवाज़ नहीं निकली।

वह बोलीं—मैं अपने पिता की सारी जायदाद की उत्तराधिकारिणी बनी थी और मुनीम-गुमाश्तों तथा रिश्तेदारों की लूटपाट से बचा-खुचा जो भी धन था, उसे मैंने पति की बीमारी के पीछे खर्च कर दिया है—क्या इसलिए कि उनका भला हो? जिसने मेरा सर्वनाश किया, मैं उसीका हित चाहूंगी, यह बात आपने सोची भी तो कैसे?

मैंने छूटते ही कहा—इससे तो बेहतर होता कि उनका खून कर दिया जाता।

उन्होंने भी तुर्की-बतुर्की जवाब दिया—पर इससे बदला तो नहीं लिया जा सकता। खून करने पर उन्हें अपने अपराध का दण्ड कैसे मिलेगा? उल्टे यह उनका भला करना होगा।

मैंने कहा—तो फिर उन्हें बचा लीजिए।

—बात तो एक ही हुई न! दण्ड तो नहीं मिला! इस प्रकार जीना भी नहीं, मरना भी नहीं, मैं इसी तरह उन्हें रखना चाहती हूं। इस आदमी को जानना चाहिए कि किसी औरत का सर्वनाश करने पर इतनी आसानी से छुटकारा नहीं पाया जा सकता।

—इन्हें जानना चाहिए कि दुनिया की हर औरत निरीह और बेवकूफ नहीं होती। औरत में भी आत्मसम्मान का बोध रहता है। उसे भी आत्म-मर्यादा का ज्ञान रहता है। औरत में भी प्राण होते हैं।

थोड़ा रुककर फिर बोलीं—रात बहुत हो गई है, आप घर जाइए। इस पाप की कोई सफाई नहीं, कोई प्रायश्चित्त भी नहीं।

उसके बाद मैं वहां ठहरा नहीं था। विमूढ़-सा उनके घर से चला आया था। सोचा था, यह बात चारों ओर फैला दूंगा। इन्दुलेखा देवी के झूठ गौरव को मटियामेट कर दूंगा; पर उसी समय तीन साल के लिए मुझे कलकत्ता के बाहर जाना पड़ा। इतना अचानक जाना पड़ा कि भुवन बाबू को भी खबर नहीं कर सका। पूरे राजस्थान का दौरा करने वाली नौकरी थी मेरी। पर वह कहानी कुछ और ही है, उसकी पृष्ठभूमि भी दूसरी है—वह दूसरी दुनिया की कहानी है। वह प्रसंग यहां अवांछनीय है।

यों ही एक दिन मुधन बाबू को चिट्ठी लिखकर मैंने उनसे एक चौंका देने वाला अजीब उत्तर पाया। मुधन बाबू ने लिखा था—

आपको सुनकर दुःख होगा कि हमारे स्कूल की इन्दुलेखा देवी ने अचानक आत्महत्या कर यहाँ के निवासियों को दुःख के सागर में डुबो दिया है। ऐसा उन्होंने क्यों किया, कौन जाने? ऐसी टीचर पाना हमारे लिए सौभाग्य की बात थी। पुलिस आत्महत्या का रहस्य सुलझा नहीं सकी है। हमारी भी समझ में यह बात नहीं आई कि उन्होंने क्यों इस प्रकार निर्दय के हाथों अपनी बलि दी! हमारे स्कूल में उनकी मृत्यु पर विराट शोक-सभा हुई थी। सभी ने यही कहा कि उनकी जैसी सती, पतिपरायणा महिला आज की दुनिया में दुर्लभ है। हम उनकी महती आत्मा की मुक्ति की कामना करते हैं। स्कूल में उनका एक तैल चित्र टाँगने का प्रस्ताव भी मैंने पास करवाया है। आशा है, यह खबर सुनकर आपको खुशी होगी।

मुधन बाबू की चिट्ठी पाने के बाद मैंने उन्हें और अधीर बोस को लिखा कि वे अटल दा की खबर लेकर मुझे लिखें। पर अटल दा की खबर कोई नहीं दे सका।

हो सकता है, अटल दा भी अब इस दुनिया में न हों। मुन्नी देवी भी नहीं। पर संसार के किसी कोने में अगर आज भी उनका अस्तित्व है तो मैं प्रार्थना करता हूँ कि भले ही एक पल के लिए ही क्यों न हो, अटल दा के जीवन में शान्ति हो।

धन सभी को नहीं मिलता, धर्म भी नहीं। पाने पर भी जीवन में सब लोग उसे काम में नहीं ला सकते; पर इन सबसे कीमती चीज है, शान्ति। मैं जानता हूँ कि अटल दा ने यह शान्ति नहीं पाई थी। जिसके जन्म-लग्न में ही पापी-ग्रह हो, उसे जीवन-भर शान्ति मिल भी कैसे सकती है!

अटल दा और इन्दुलेखा देवी की यह कहानी प्यार की कहानी है

या प्रतिशोध की; या फिर सिर्फ नियति के निष्ठुर परिहास की, मैं नहीं समझ सका, अब भी नहीं समझ पा रहा हूं। कहानी जैसी-जैसी घटी थी, मैं लिख गया। यह कहानी पढ़कर इसमें अन्तर्निहित तथ्य को खोजकर आपको आनन्द या वेदना जो भी हो—मैं उसीके लिए अपने को कृतार्थ मानूंगा।

OOO